जाकर जन परदेस में, खूब कमावे ऋद्धि ;
जन्मभूमि में लौट फिर, दरसावे सुसमृद्धि ।

(दलपतराम की गुजराती
कविता से ।)

विज्ञापन

श्रीमान् सरकार महाराज साहब के विशेष आज्ञापत्र (नं० २४ तारीख़ ६-३-०४) में हुक्म हुआ कि इस राज्य की प्राथमिक पाठशालाओं में नीति-विषयक शिक्षा देने के लिये एक पुस्तक तैयार कराई जाय। तदनुसार भिन्न-भिन्न जातियों के मान्य सज्जनों तथा युनिवर्सिटी के पदवीधारी कर्मचारियों की एक कमिटी बनाई गई, और सब धर्मों तथा जातियों के उपयुक्त पुस्तक किस ढंग से तैयार कराई जाय, इसका निश्चय किया गया। इसके अनंतर उस पुस्तक के बनाने का भार अहमदाबाद, गुजरात-कॉलेज के प्रोफ़ेसर आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव एम्० ए०, एल्-एल्० बी० के सुपुर्द किया गया। तदनुसार उन्होंने प्राथमिक पाठशालाओं के उपयोग के लिये यह प्रथम पुस्तक तैयार की। इस पुस्तक का लेना विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य नहीं है, परंतु शिक्षकों को इसके पाठ पढ़कर उनका मर्म, समय-समय पर, विद्यार्थियों को सुनाना चाहिए।

ता० २९ अगस्त सन् १९११ ई० } ए० एम्०, मसानी (विद्याधिकारी)

कृतज्ञता-प्रकाश

(द्वितीयावृत्ति पर)

हम गुरुकुल कांगड़ी आदि शिक्षा-संस्थाओं के बड़े कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपने पाठ्य-क्रम में इस अमूल्य पुस्तक को स्थान देकर हमारा उत्साह बढ़ाया है। आशा है, अन्यान्य शिक्षा-संस्थाएँ भी इनका अनुकरण करेंगी।

लखनऊ
२६-५-३१ } प्रकाशक

अनुवादक के दो शब्द

हिंदी में नीति तथा सदाचार पर नए ढंग से लिखी गई पुस्तकों की कमी है। ऐसी दशा में आशा है कि प्रो० आनंदशंकर बापूभाई ध्रुवजी की 'नीति-शिक्षा' नाम की गुजराती पुस्तक का यह अनुवाद उन विषयों पर ग्रंथ लिखने के इच्छुकों को एक नया और उत्तम ढंग बतलावेगा, तथा बालकों और बालिकाओं के उपकार का साधन होगा।

इस अनुवाद में कहीं-कहीं—आवश्यकतानुसार—कुछ स्वतंत्रता से भी काम ले लिया गया है, परंतु इस ढंग से नहीं कि मूल के अर्थ का अनर्थ हो जाय।

मैं प्रो० ध्रुवजी तथा बड़ोदा-सरकार के शिक्षा-विभाग का विशेष कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने कृपा करके इसका अनुवाद करने की अनुमति मुझे दी।

लखनऊ }
२०-२-२५ } बदरीनाथ भट्ट

प्रस्तावना

पाठशालाओं में नीति और धर्म की शिक्षा का समावेश करने की ख़बरें आजकल बहुत जगह सुनने में आती हैं, परंतु इस विचार को कार्य-रूप में परिणत करने के लिये जो प्रयत्न करना चाहिए, उसको सबसे पहले करने का श्रेय श्रीमान् महाराजा साहब श्रीसयाजीराव गायकवाड़ को मिलना चाहिए। उन्होंने कई वर्ष पहले ही यह काम मुझे सौंप दिया था, परंतु दैवयोग से बहुत-सी आपत्तियों के कारण मैं इस काम को जल्दी न कर सका। जो करूँ, वह शांत चित्त से करूँ, तो ठीक हो—इस लोभ से मैंने इस काम को बहुत दिनों तक रोक रक्खा, और उधर अन्य व्यवसायों ने मुझे भी बहुत कुछ रोक रक्खा। इस विलंब को जिस उदारता और तितिक्षा के साथ श्रीमान् महाराजा साहब तथा उनके शिक्षा-विभाग और बड़ोदा-राज्य की प्रजा ने सहा, उसके लिये मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ।

मुझे जो काम सौंपा गया था, उसका यह पहला भाग है। इस भाग की रचना में विविध धर्मों तथा साहित्यों के—पाश्चात्य और दूसरे—ग्रंथों का साक्षात् उपयोग किया गया है। वर्तमान समयोचित कथाओं के लिये मैंने मि० गूल्ड की पुस्तकों से लाभ उठाया है, और पुस्तक को रोचक बनाने के लिये अपने गुजराती कवियों तथा लेखकों के स्वतंत्र काव्य, भाषानुवाद इत्यादि विविध लेखों से उचित फेरफार करके अवतरण दिए हैं। श्रीमहाराजाधिराज पंचम जार्ज-संबंधी पाठ के लिये 'गुजराती' पत्र की और श्रीमहाराजा साहब सयाजीराव-संबंधी पाठ के लिये मि० दीवान टेकचंद-कृत जीवनचरित्र की सहायता ली गई है। यहाँ मैं इन सब महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अंत में अपने गुजराती भाइयों से एक विनती करता हूँ कि नीति-शिक्षा की जो पुस्तकें हाल में प्रकाशित हुई हैं, उनमें यह पहली है, और इसलिये इसमें अनेक दोषों का होना संभव है । इसलिये यदि उनकी ओर से मुझे कोई सूचना मिले, तो अच्छा है, क्योंकि ऐसा होने से मैं दूसरी आवृत्ति के समय ध्यान रख सकूँगा । गुजरात के बालकों को कैसी नीति-शिक्षा देना ठीक है, इस प्रश्न के निर्णय करने का अधिकार केवल मुझे ही नहीं है, समस्त गुजरात का इसमें हित है; और इसलिये हरएक देशहितचिंतक का, जिसने इस विषय पर विचार किया हो, अधिकार है—बल्कि कर्तव्य है—कि इस संबंध में अपनी सम्मति प्रकट करे ।

इस पुस्तक को मैंने किस ढंग से लिखा है, और इसे किस रीति से पढ़ना चाहिए—इसके बारे में "शिक्षक को सूचना" तथा "विषय-क्रम-संबंधी खुलासा" में विस्तार से लिखा गया है ।

अहमदाबाद,
संवत् १९६७

आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव

शिक्षक को सूचना

बालकों का चरित्र गढ़ना, उनमें आचार-विचार की अच्छी-अच्छी आदतें डालना—यह नीति-शिक्षक गुरु का काम है। यह काम विद्यार्थियों को तोते की तरह नीति का पाठ पढ़ाने या शब्दों का अर्थ पूछने से नहीं होता। जब गुरु के मुख से—बल्कि उसकी आत्मा और जीवन से—विद्यार्थियों के प्रति इस रीति से सत्य निकले कि वह बालकों के भाव, बुद्धि और आत्मा को जगा दे, तभी वह विद्यार्थियों की अंतरात्मा में गहरा प्रवेश कर सकता और उनके जीवन पर प्रभाव डाल सकता है। इसलिये इन पाठों को बालकों को पाठ्य पुस्तकों की तरह नहीं पढ़ाना चाहिए, बल्कि जैसे पदार्थ-विज्ञान के पाठ सिखलाए जाते हैं, वैसे सिखलाना चाहिए; अर्थात् कथाएँ मनोरंजक रीति से कहनी चाहिए, और उनमें से विद्यार्थियों से प्रश्न पूछकर बहुत-से निष्कर्ष (सार तत्व) निकलवाने चाहिए। जो अधिक सूक्ष्म हों, या जो ऐसे हों कि उनकी चर्चा करने में बालक निरर्थक विषयांतर में चले जायँ, उन्हें शिक्षक को स्वयं कहना चाहिए। पाठ और टिप्पणी—कथा का स्वरूप और उसके अंतर्गत, ध्यान में रखने योग्य, सिद्धांत—केवल इसलिये रक्खे गए हैं, जिससे पहले शिक्षकों का और अंत में विद्यार्थियों का ध्यान जमे।*

---

*पद्धति निर्धारित करने के बाद देखता हूँ कि प्रकृत विषयों के महान् विद्वान् मि० अडलर मेरी पद्धति का जोर से समर्थन करते हैं—

"As to the method of handling them, I should say to the teacher; relate the fable; let the pupil repeat

यह न समझना चाहिए कि पाठ जिस सूरत में लिखे गए हैं, उसी सूरत में बालकों को दिए जाने चाहिए। किसी एक ढंग को स्वीकार कर लेने में कृत्रिमता आ जाने का भय है। ऐसा नियम नहीं है कि बात अमुक ही ढंग से कहना चाहिए। विद्यार्थियों और शिक्षक का मन भिन्न-भिन्न समय भिन्न-भिन्न प्रसंगों में, विचार और रस की भिन्न-भिन्न नाड़ियों में बहता रहता है, इसलिये कहानी कहने का एक ही ढंग निर्धारित करना असंभव है। तथापि नीति-शिक्षा का वर्ग (क्लास) किस रीति से चलाना चाहिए, इसका कुछ दिग्दर्शन 'यक्ष-प्रश्नोत्तर' इत्यादि कितने ही पाठों में कराया गया है। इसके अतिरिक्त पाठशाला में नित्य होनेवाले मामलों में से स्वभावतः एक आध नीति का विषय सिखाया जा सकता है; जैसे कि पहले दिन पाठशाला में तीन चक्कर दौड़ने का खेल हुआ था, जिसमें एक बालक पहले चक्कर में ख़ूब ज़ोर से दौड़ा, और पीछे से थक गया; दूसरा पहले से इतना धीमे चला कि पीछे बहुत ज़ोर से दौड़ने पर भी न पहुँच सका; और तीसरा आरंभ से अंत तक मध्यम गति से दौड़ा, और सबसे अव्वल आया। ऐसी-ऐसी बातों में से मिताहार, मितविहार—या लोभ और फ़ुज़ूलख़र्ची को छोड़कर उचित ख़र्च करने का उपदेश दिया जा सकता है। किसी दिन के इतिहास या भूगोल के पाठ में से भी विषय लेकर नीति का उपदेश किया जा सकता है। (उदाहरण—पृथ्वीराज के समय में देश

---

it in his own words, making sure that the essential points are stated correctly. By means of questions elicit a clean cut expression of the point which the fable illustrates ; then ask the pupil to give out of his experience other instances illustrating the same point. This is precisely the method pursued in the so-called primary object-lessons."

Mr. ADLER.

को फूट; स्वेज़ की नहर खोदनेवाले लेसेप्स का "भगीरथ-प्रयत्न" इत्यादि)।

कितने ही उपदेशकों (जैसे मि० गूल्ड) की रीति होती है एक सद्गुण पर अगणित कथाएँ कहकर उसका स्वरूप समझाना। परंतु मुझे यह रीति अच्छी नहीं मालूम होती। चर्चा चाहे जितनी की जाय, परंतु कुछ विशेष कथाएँ तो समस्त जीवन-पर्यंत बालकों के सम्मुख आदर्श-रूप होकर रहें, ऐसा होना चाहिए; और इस कारण से नीचे दिया हुआ मि० अडलर का ढंग मुझे विशेष पसंद है—

"The stories to which I refer possess a perennial vitality, an indestructible charm. I am no blind worshipper of antiquity......But the fact that often having been repeated for two thousand years a story still possesses a perfectly fresh attraction for the child of to-day, does indeed prove that there is in it something of imperishable worth."

परंतु प्राचीन कथाओं की महत्ता स्वीकार करने के साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्राचीनता हमारे जीवन से बिछुड़ न जाय, अर्थात् उसकी भावना व्यवहार योग्य प्रतीत होनी चाहिए; और इस कारण से कितनी ही कथाएँ वर्तमान जीवन में से ली गई हैं। इतना ही नहीं, प्राचीन कथाओं पर लक्ष्य कराकर पीछे यह भी, विवेचन करके, बतलाया गया है कि उनका उपदेश वर्तमान जीवन में कैसे काम में लाना चाहिए, और जगह-जगह यह भी स्पष्ट रीति से बतलाया गया है कि इतिहास और जीवनचरित्रों में से प्राचीन कथाओं का कैसा उपबृंहण करना चाहिए।

बालकों का विशाल जगत् के साथ संबंध कराना है, इस बात को ध्यान में रखकर शिक्षक को चाहिए कि छोटी उम्र से ही जगत् से उनका परिचय कराना शुरू कर दे।

ईसपनीति के समान सरल कथाओं से, जिनमें एक सद्गुण पर एक कथा हो, आरंभ कर, पीछे से बालकों को गुण-दोष से भरी, जगत् का प्रतिबिंब दिखलानेवाली अनेक मिश्रित कथाएँ बतलानी चाहिए। ऐसा न समझना चाहिए कि एक ही कथा में से सब सिद्धांत एक ही समय में निकालने हैं। एक की एक ही कथा बार-बार प्रसंग पड़ने पर लेनी पड़ती है, जैसे युधिष्ठिर और यक्ष की कथा, जो भाइयों के स्नेहवर्णन में, और सुख तथा नीति के संबंध की चर्चा में भी काम में लाई जा सकती है।

साफ़-साफ़ तरीक़े से एक के पीछे दूसरा विषय उठाना चाहिए। (विषय-क्रम-संबंधी ख़ुलासा इस पुस्तक के साथ दिया गया है, तथा जुदे-जुदे खंडों के अवतरणों में भी यह बात अधिक स्पष्ट रीति से बतलाई गई है।) जिससे कि नीति की शिक्षा केवल प्रसंगोपात्त और कुछ इधर कुछ उधर न हो, इसीलिये तो सामान्य पाठ्य पुस्तकों में नीति-संबंधी पाठों के होते हुए भी इस पुस्तक की योजना की गई है। * परंतु इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बालकों का जी न ऊबने पावे।

इसके अतिरिक्त यह भी ज़रूरी नहीं है कि हरएक विषय के सब पाठ एक के बाद एक लिए ही जायँ। विद्यार्थियों की आयु, ग्रहण करने

---

* "Such instruction may either (1) be incidental, occasional and given as fitting opportunity arises in the ordinary routine of lessons or (2) be given systematically and as a course of graduated instruction." "The preface to the code of 1906 suggests the desirability of rendering the instruction direct, systematic and graduated rather than incidental."

Mr. GULD.

की शक्ति, वस्तु की न्यूनाधिक गहनता इत्यादि पर दृष्टि रखकर पाठ पसंद करना चाहिए। मतलब यह कि यह जड़ पुस्तक बालकों की शिक्षक नहीं, चेतन शिक्षक ही उनका शिक्षक है, और यह पुस्तक तो शिक्षक के हाथ में दिया हुआ एक साधन-मात्र है—यह बात शिक्षकों को ध्यान में रखनी चाहिए।

इस पुस्तक में छापे के, भाषा के और विषय के अनेक दोष होंगे—मैं जानता हूँ कि हैं—परंतु उन सबको दरगुज़र करके, "क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे" इस न्याय से शिक्षक काम करेंगे, तो इस क्षुद्र साधन के द्वारा वह अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकेंगे, ऐसी मुझे आशा है।

अहमदाबाद,
कृष्णजन्माष्टमी, सं० १९६७ } आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव

विषय-क्रम-संबंधी खुलासा

आरंभ में नीतितत्त्व का दिग्दर्शन कराकर, खंड १ से ६ तक विविध सद्गुणों का निरूपण किया है ; और अंतिम दो खंडों में नीति का तत्त्वज्ञान दिया है। क्रम की योजना स्थूल से सूक्ष्म की ओर— निकट से दूर की ओर, पैर से सिर की ओर—इस नियम से की है, और हरएक खंड में अधिकतर पशु-पक्षी अथवा साधारण मनुष्य-जीवन की कथाओं प्राचीन महान् ग्रंथों से ली हुई और वर्तमान समय की, सबको स्थान दिया गया है।

आरंभ—नीति का तत्त्व क्या है, महत्ता कैसी है, यह विषय बालकों के आगे किस रीति से उपस्थित किया जाय, कैसी पद्धति से सिखलाया जाय, यह सब आरंभ में बतलाया गया है। पीछे इन सब सद्गुणों का आधार—

माता, पिता और गुरु के प्रति भक्ति—यह विषय लिया है; क्योंकि जिसके हृदय में अपने से बड़ों के लिये इज़्ज़त नहीं है, वह कभी उच्च गुणों को प्राप्त नहीं कर सकता।

शरीर—(आरोग्य); माता, पिता और गुरु की भक्ति करना सारी नीति का मूल है, इसलिये इसका निरूपण सबसे पहले किया गया है। परंतु इसके बाद "धर्म का मुख्य साधन शरीर है" इस सूत्र के अनुसार शरीर के आरोग्य का विषय लिया गया है। आरोग्य किस रीति से स्थिर रखना—इस विषय में शिक्षक और जगह से बहुत कुछ बतला सकेगा, यहाँ तो केवल उन सद्गुणों के बतलाने की बात है, जो इसके लिये आवश्यक हैं, जैसे सादगी, मिताहार, नशीली चीज़ों से बचना और खेल-कूद—(कथा, विवेचन, कविता)।

विद्योपार्जन—और उसके लिये आवश्यक सद्गुण। सद्गुण-युक्त जीवन के लिये पहले शरीर और उसके बाद दूसरा साधन विद्या है; इसलिये अब यह विषय लिया गया है। विद्या के लाभ और उसके प्राप्त करने के लिये आवश्यक लगन, धैर्य इत्यादि की ज़रूरत बतलाकर, इस खंड के अंत में परशुराम और कर्ण की कथा में यह दिखलाकर कि असत्य से विद्या कैसे निष्फल हो जाती है, सत्य का विषय शुरू होता है।

सत्य—इस विषय में असत्य का स्वरूप, उसके प्रलोभन (लालच), उसके विविध प्रकार, सत्य के अवलंबन में कठिनाइयाँ आदि का निरूपण विस्तार के साथ किया गया है। इसके अनंतर—

उद्योगादिक गुण—उद्योगी जीवन की महत्ता; स्वाश्रय, पराक्रम आदि मानसिक गुणों को, प्रथम उनके सामान्य स्वरूप में बतलाकर, पीछे धन कमाने और ख़र्च करने के विशेष स्वरूप में दिखलाया गया है।

अभी तक जिन सद्गुणों का वर्णन किया गया है, वे स्थूल हैं और ऐसे हैं कि उन्हें बालक झट समझ सकते हैं। इसके बाद—

दोष का प्रकरण लिया है। उसमें मिथ्या संतोष, गर्व, द्वेष, तिरस्कार, ईर्षा इत्यादि अवगुण लिए हैं; और पीछे संतोष, शांति इत्यादि का उपदेश कर, ईर्षा का उलटा जो प्रेम है, उसका प्रकरण खोला गया है।

प्रेम इत्यादि गुण—इस प्रकरण में स्वाभाविक क्रम—कुटुंब, देश और वसुधा (समस्त मनुष्य-जाति) इस प्रकार दिया हुआ है—

भाई-भाई का, पति-पत्नी का, मित्रों का, स्वामी-सेवकों का, मनुष्य-पशु आदिक का स्नेह बतलाकर राजभक्ति की आवश्यकता और उसका निस्स्वार्थ स्वरूप बतलाया गया है।

इसके बाद स्वदेश-भक्ति, स्वदेशाभिमान और स्वदेश-ममता की पुष्टि करनेवाले काव्य और सच्ची स्वदेश-सेवा का स्वरूप बतलानेवाले

पाठ सन्निविष्ट किए गए हैं। इनमें काव्यों का विशेष उपयोग किया गया है, क्योंकि ये सद्गुण गद्य की अपेक्षा पद्य द्वारा अधिक अच्छी तरह जाग्रत् किए जा सकते हैं।

इसके अनंतर एकता, एकता के लिये क्षमा, अपमान-सहन, मृदु वचन आदि की आवश्यकता बतलाकर, एकता और प्रेम के विघातक वैर, क्रोध आदि दोषों का निषेध कर, क्षमा, दया, स्वार्थत्याग, सम-भाव, भ्रातृभाव, परोपकार आदि सद्गुणों का बोध कराकर सद्गुणों (Virtues) के विषय का निरूपण समाप्त किया गया है। इसके बाद—

नीति (Morality)—का बालोपयोगी तत्त्वज्ञान सीधे स्वरूप में बतलाया गया है। जहाँ सुख ('प्रेय') और कर्तव्य ('श्रेय') का विरोध आवे, वहाँ कर्तव्य के मार्ग पर चलने की आवश्यकता बत-लाई गई है। पीछे कर्तव्य-भंग करानेवाले लालचों के बल का वर्णन करके, कर्तव्य-भंग से होनेवाले शारीरिक और मानसिक दंडों को बतलाया गया है। पाप-पुण्य का न्याय करने में ईश्वर क्या देखता है, यह समझाकर, पाप के लिये पश्चात्ताप कर नया जीवन शुरू करना कदापि असंभव नहीं, यह कहकर, और शील की महिमा बतलाकर इस प्रकरण को समाप्त किया गया है।

नीति-विषय का ज्ञान केवल पाठशाला में शिक्षक से ही लेने का नहीं है, इसके संबंध में विद्यार्थियों को स्वयं स्वतंत्र विचार करने की आदत डालनी चाहिए—यह बतलाने के लिये अंत में यक्ष-प्रश्नोत्तर की कथा का एक पाठ रक्खा गया है और इस रीति से ग्रंथ पूर्ण किया गया है।

आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव

विषय-सूची

बाल-नीति-कथा

आरंभ

ईश्वर की इस अनोखी सृष्टि को देखना और इसमें से पवित्र उपदेश ग्रहण करना ही नीति और धर्म की शिक्षा देने का उत्तम मार्ग है। इसी कारण गुरुजी अनेक बार शिष्यों को साथ लेकर ग्राम के बाहर घूमने जाते और उन्हें सृष्टि के भाँति-भाँति के दृश्य दिखाकर उनमें से अनेक उपदेश निकाल-कर दरसाते थे। एक दिन गुरुजी प्रातःकाल शिष्यों को साथ लिए ग्राम के बाहर नदी के किनारेवाली एक छोटी पहाड़ी के करार पर बैठे थे। सूर्य अभी क्षितिज के ऊपर उदय होकर दूर की झाड़ी से ऊँचा चढ़ रहा था। पास ही नदी खल्-खल् करती बहती थी, और एक गड़रिया भेड़ों के झुंड को लेकर पार जाता था। यहाँ पहाड़ी की तलहटी के पास हरे, रस-भरे वृक्षों में पक्षी आनंद से मधुर गान कर रहे थे। इतने ही में एक बाज पक्षी ने उन पर झपट्टा मारा, जिससे छोटे-छोटे पक्षियों ने ऐसे जोर से चहचहाना शुरू किया कि ऊँचे करार पर बैठे हुए गुरुजी तथा शिष्यों का ध्यान उस ओर गिया।

एक शिष्य—गुरुजी महाराज, उस तलहटी की झाड़ी में से पक्षी एकदम उड़े और चहचहाने लगे, यह आपने देखा ?

गुरुजी—हाँ, वसंतलाल ! पर यह तो बतलाओ कि इसका कारण क्या है ?

वसंतलाल—महाराज, कुछ समझ में नहीं आता।

गुरुजी—मालूम होता है, तुझे भीतरी बात को जाँच लेने की आदत नहीं। चुन्नीलाल बतलावेगा।

चुन्नीलाल—महाराज, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि वह बड़ा पक्षी इनके घर पर धावा करने आया है, इससे बेचारी चिड़ियाँ घबराकर चीं-चीं कर रही हैं।

गुरुजी—तू ठीक कहता है।

छगनलाल—यह पक्षी कितना निर्दय होगा। बेचारी चिड़ियों को हैरान करता है !

गुरुजी—अनाथ और निर्बल को जो हैरान करे, वह निर्दय तो अवश्य है ; परंतु इस निर्दयता में यह पराधीन है। हम इसका क्या दोष निकालें ? मनुष्य तथा पशु-पक्षी में यह भेद है कि मनुष्य को भले-बुरे का विचार है, और यह विचारकर वह जिस मार्ग पर जाना चाहे, जा सकता है; पर पशु-पक्षी तो अपनी-अपनी वृत्ति के अधीन होते हैं। ये वृत्तियाँ—भूख, प्यास इत्यादि को शांत करना—इन्हें जिस तरफ़ ढकेलती हैं, उसी तरफ़ ये जाते हैं।

वेणीलाल—पर महाराज, मुझे वे भेड़ें बड़ी अच्छी मालूम

होती हैं। वे मनमानी नहीं चलतीं, जहाँ गड़रिया ले जाता है, वहीं नीचा मुँह किए चली जाती हैं।

गुरुजी—ठीक वेणीलाल, परंतु जैसे वृत्ति के वश होकर मनमाना वर्ताव करना बुरा है, वैसे ही दूसरे के अधीन रहकर विना विचार किए वह जहाँ ले जाय, वहीं जाना भी बुरा है। मनुष्य का मनुष्यत्व दोनो बातों में से एक में भी नहीं; विचार-कर भले मार्ग में अपने को ले जाने में ही मनुष्यत्व है। इसी का नाम नीति है। जब तक हममें कल्याण का मार्ग विचारने की शक्ति न हो, तब तक भेड़ की तरह दूसरे के पीछे-पीछे उसके कहने पर चलना ठीक है; नहीं तो जैसे वाड़े में से पड़ा निकला और बाघ ने खा लिया, या जैसे मा का कहा न मानकर उब-लते हुए पानी के बर्तन के पास मक्खी का बच्चा गया और जल मरा, ऐसी ही दुर्दशा मनमानी चाल से होती है। परंतु सदा भेड़ की तरह चलना ठीक नहीं। जैसे-जैसे बड़ा होता जाय, वैसे-वैसे मनुष्य को स्वयं यह विचारने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए कि "कल्याण का मार्ग कौन-सा है।" इसीलिये मैं तुमको नीति के विषय में विचार करना सिखलाऊँगा। पर जैसे पानी में जाकर हाथ हिलाए विना तैरना नहीं आता, इसी तरह नीति के मार्ग पर चलना शुरू किए विना नीति का स्वरूप समझ में नहीं आता। इसलिये नीति की इमारत कैसी बनानी और कैसे बनानी, इसकी वेल किस तरह बोनी और किस तरह सींचनी, यह बतलाने से पहले इस इमारत का कैसा पाया
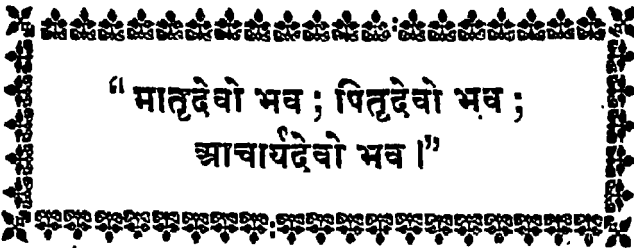
रखना और कैसे रखना, इस वेल के लिये भूमि कैसी बनानी और कैसे बनानी, इस विषय में मैं कल तुम्हें कितने ही उप-देश दूँगा, सो सुनना।

सब शिष्य गाते हैं—

मानुष बनते नीति से, नय-विन पशू-समान ;
इससे मन में नीति को, रखिए सदा सुजान।

नीति की इमारत की नींव ईंटों की तरह सद्गुणों को एक के ऊपर एक रखने से नहीं बँधती। इसी प्रकार पृथ्वी में बीज बोकर, पानी से सींचकर अलग खड़े रहने से नीति की बेल नहीं उगती। नीति में बनावटी घटना और असली उल्लास या मधुरता, ये दोनो इकट्ठे होते हैं। बालकों को नीति-शिक्षा देते समय यह बात शिक्षक को सदा याद रखनी चाहिए।

"मातृदेवो भव; पितृदेवो भव;
आचार्यदेवो भव।"

१—कसाई भगत

पहले समय में, राजा जनक की राजधानी मिथिलानगरी में, एक बड़ा ज्ञानी व्याध रहता था। इसकी नामवरी सुनकर इससे ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से कौशिक ऋषि मिथिलानगरी गए। नगरी में पहुँचकर उन्होंने उसका पता पूछा। नगर के सभी धार्मिक तथा ज्ञानी पुरुष कसाई भगत का नाम जानते थे। लोगों ने तुरंत इसका घर बतला दिया। ऋषि व्याध के घर गए और वहाँ इस व्याध के मुख से बहुत ज्ञान सुना। कौशिक ऋषि को अचरज से सन्न देखकर व्याध बोला—"महाराज, मैंने अभी तक आपसे जो कुछ कहा, वह मुख से कह सुनाया, अब मैं आपको सब धर्मों का सार प्रत्यक्ष दिखाता हूँ, अपनी आँखों से देख लीजिए।" यह कहकर वह कौशिक ऋषि को अपने घर के भीतर ले गया। वहाँ एक बड़े और सुंदर कमरे में धर्मव्याध के माता-पिता भोजन कर सफ़ेद कपड़े पहनकर एक उत्तम आसन पर बैठे थे। व्याध ने अपने माता-पिता के दर्शन कर, और उनके चरणों में मस्तक नवाकर उन्हें साष्टांग दंडवत्-प्रणाम किया। माता-पिता ने आशीर्वाद दिया—"दीर्घायु हो, धर्म तेरी रक्षा करे।" फिर व्याध ने कौशिक ऋषि को अपने माता-पिता से मिलाया और उनसे कहा—"हे महाराज, मेरे देव कहिए, यज्ञ कहिए, वेद कहिए,

जो कुछ भी हैं, वह मेरे माता-पिता ही हैं। मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरे मित्र, सब इनकी सेवा में लगे रहते हैं। मैं अपने हाथ से इनको स्नान कराता हूँ और आप ही नित्य भोजन करता हूँ। मेरा ऐसा विश्वास है कि जो कोई अपना भला चाहे, उसे माता-पिता की सेवा करनी चाहिए, यही सनातन धर्म है।"

(१) श्रवण ने अपने अंधे मा-बाप को डोली में बैठाकर और डोली को अपने कंधे पर रखकर सब देशों के तीर्थ कराए, यह बात सबको विदित है। ऐसे ही रामचंद्रजी ने, अपने पिता दशरथ की आज्ञा मान, भरत को राज-पाट दे, वनवास लिया था, यह बात भी सबको अच्छी तरह ज्ञात है। इसलिये एक व्याध, मा-बाप की सेवा कर, कैसा ज्ञानी बना और 'धर्मव्याध' अर्थात् 'कसाई भगत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा कौशिक ऋषि तक को उसने ज्ञान दिया, यह बात इस पाठ में बतलाई गई है।

(२) मा-बाप की भक्ति धर्म का मूल और सब धर्मों का पहला उपदेश है। जो मा-बाप की भक्ति करना सीखेंगे, वे ही इस सचराचर लोक के माता-पितारूप परमेश्वर की भक्ति करना जानेंगे। अब इस भक्ति के स्वरूप को जानना चाहिए। इस भक्ति में (१) सम्मान और (२) प्रेम और इन दो भावों से पैदा हुई सम्मान-भरी और प्रेम-भरी (३) सेवा तथा वैसा ही (४) आज्ञापालन, इन सबका समावेश होता है।

(१) सम्मान—तीन प्रकार से—मन, वाणी और कर्म तीनों में—

(क) मन अर्थात् हृदय में मा-बाप के लिये सम्मान होना, अर्थात् उनके बारे में कोई अनुचित विचार कभी मन में न लाना, उनके दोषों को मन में स्थान न देना। बड़े हमसे बड़े हैं, इनके दोष निकालना हमारा काम नहीं है, यह सदा याद रखना चाहिए।

(ख) इनके साथ बातचीत करने में एक भी मूर्खता या छिछोरपन का शब्द मुख से नहीं निकालना चाहिए। पारसी-कुटुंबों में मा-बाप को 'जी' कहकर उत्तर देने की जो रीति है। वह बहुत अच्छी है।

(ग) मा-बाप की उपस्थिति में उठना-बैठना वग़ैरह जो कुछ भी काम करना हो, वह भलमनसई से करना चाहिए। उदाहरण के लिये, यदि वे पास खड़े हों, तो उस समय हमको बैठा रहना उचित नहीं। ऐसे दो देखने में तो कुछ नहीं मालूम होते, परंतु वास्तव में वे हमारे हृदय में आदर का भाव न होना दरसाते हैं।

(२) प्रेम—बिना प्रेम के सम्मान सूखा है। प्रेम एक ऐसा भाव है कि इसके द्वारा किए गए काम ठीक और पूरे होते हैं। पुत्रों का प्रेम देखकर मा-बाप का मन सुखी होता है, और जो मिहनत वे पुत्रों के लिये उठाते हैं, वह हल्की हो जाती है। चाहे उनका जीवन बहुत सफल न रहा हो, चाहे वे निर्धन ही रहे हों, अथवा किसी और विपत्ति में हों, कुछ भी हो, लेकिन यदि पुत्र स्नेह से सेवा करते हों, तो उनकी आत्मा को बड़ी शांति मिलती है।

(३) सेवा—यदि सम्मान और प्रेम वास्तव में हृदय में हों, तो उसमें से सेवा अपने आप निकलनी चाहिए। क्या करने से मा-बाप का कष्ट कम होगा, इसकी चिंता पुत्रों को सदा रखनी चाहिए। बचपन में मा-बाप ने कितने कष्ट उठाकर हमें पाला है, इस विषय में अच्छे-अच्छे कवीश्वरों की कविता सुनानी चाहिए।

(४) आज्ञापालन—बालकों को मा-बाप की आज्ञा माननी चाहिए, तुरंत माननी चाहिए; क्योंकि तुम मा-बाप के बालक हो, गुलाम नहीं। आज्ञा मानने से कितनी मुसीबत भोगनी पड़ेगी, इसकी ज़रा भी चिंता न करके आज्ञा माननी चाहिए। रामचंद्रजी ने पिता

की आज्ञा मानकर वनवास लिया ; इतना ही नहीं, बल्कि ऐसी घोर आज्ञा देने में पिता को जो क्लेश हो रहा था, उसे भी, स्वयं आज्ञा माँगकर, दूर किया ।

२—डामा जौहरी

पूर्वकाल में, पैलेस्टाइन में, डामा नाम का एक जौहरी रहता था। वह क़ीमती-से-क़ीमती जवाहरात रखता था। और, जब किसी को बढ़िया माल ख़रीदना होता था, तब वह डामा के ही घर लेने आता था। एक बार जेरूसलम के आचार्य के हार के लिये कुछ बढ़िया हीरों की ज़रूरत हुई। उन्हें लेने के लिये लोग डामा के घर गए। डामा ने इनका स्वागत किया और अच्छे-अच्छे हीरे निकालकर दिखलाए, परंतु ख़रीदारों के ध्यान में इनमें से एक भी न जँचा। डामा ने कहा, ज़रा बैठो; मैं पासवाले घर में से और माल लाता हूँ। यह कहकर वह घर के उस हिस्से में गया, जहाँ उसका पिता सोता था। परंतु हीरे निकालने के लिये किवाड़ खोलते समय खड़-खड़ होने लगी, जिससे उसके पिता ने करवट बदली। यह देख डामा ने विचार किया कि यदि और खोलूँगा, तो और भी आवाज़ होगी, और इनकी नींद टूट जायगी। इससे वह हीरे निकाले बिना ही लौट आया और आकर ग्राहकों से कहा कि मेरे पिता सो रहे हैं और किवाड़ खोलने से शायद जग जायँ, इसलिये आप लोग थोड़ी देर पीछे आइए। ग्राहकों ने इससे यह समझा कि

इसके पास बढ़िया माल नहीं है, कोरे बहाने करता है, इसलिये वे अप्रसन्न होकर और यह कहकर कि "हमें तेरा माल नहीं चाहिए, रहने दे"—चले गए।

पिता की निद्रा भंग न हो जाय, इस कारण डामा ने अधिक लाभ की भी परवा न की! ठीक है, पैसा क्या पिता से भी बढ़कर है? कदापि नहीं।

श्रवण ने डोली (बेंगी) में बैठाकर अपने वृद्ध माता-पिता को तीर्थ-यात्रा कराई थी; क्लिआविस तथा बीटो ने अपने आप रथ खींचकर मा को देवी के दर्शन कराए थे; रामचंद्रजी ने पिता के वचन की ख़ातिर वनवास लिया था; और इनियास जलते हुए ट्राय में से अपने पिता को कंधे पर बैठाकर बाहर लाया था।

इन सब दृष्टांतों में "चाहे जितना कष्ट मिले, पर उसे भी सहकर माता-पिता की सेवा करनी चाहिए," यही बात दिखलाई गई है और हमें चाहिए कि हम इसको हृदय में रक्खें। परंतु हमारे साधारण व्यवहार में ईश्वर कभी ऐसी कठिन कसौटी पर हमें नहीं कसता। मा-बाप की आज्ञा मानो, उनको सुखी रक्खो, और उनकी छोटी-से-छोटी सेवा बहुत चिंता और भक्ति के साथ करो। इतना ही बहुत है; यही ईश्वर तुमसे चाहता है। क्या हमसे इतना भी नहीं बन सकता?

३—कृष्ण और सांदीपनि

गुरु-भक्ति अर्थात् गुरु के लिये आदर और प्रेम, विद्यार्थियों का बड़े-से-बड़ा धर्म है। प्राचीन भारतवर्ष में बालक का यज्ञो-

पवीत करते ही उसे गुरु के घर भेज देते थे। वहाँ वह गुरु की सेवा करता और विद्या पढ़ता था। शिष्यवर्ग में अमीर-ग़रीब का कोई भेद नहीं माना जाता था। श्रीकृष्ण भी सांदीपनि नाम के एक ब्राह्मण के यहाँ विद्या पढ़ने के लिये रहे थे और दूसरे शिष्यों की तरह गुरु की सेवा करते थे। यह बात भागवत पढ़ने से जानी जाती है। सांदीपनि ऋषि के यहाँ सुदामा नाम का एक ब्राह्मण विद्यार्थी था। इसमें और कृष्ण में बड़ी मित्रता थी। कहते हैं कि एक बार गुरुजी शहर गए हुए थे, इतने ही में गुरु-पत्नी ने इन दोनों से ईंधन लाने को कहा। इस पर ये दोनों, कंधे पर कुल्हाड़ी रखकर, पास के जंगल में निकल पड़े। वहाँ एक पुराने वृक्ष का तना पड़ा हुआ दीखा। आपस में इस बात की शर्त बदकर कि कौन अधिक लकड़ियाँ निकालता है, दोनों ने खूब लकड़ियाँ काटीं और रस्सी से गट्ठर बाँधे। इतने में बादल हो आए, बड़े वेग से हवा चली, बादल गर्जे और मूसलाधार वर्षा होने लगी। सूर्यास्त हो गया और चारों ओर अंधकार छा गया। गड्ढे और पहाड़ कुछ भी नहीं सूझने लगे; जिधर जाओ, उधर पानी-ही-पानी! दिशा भी मालूम नहीं होती थी। एक दूसरे का हाथ पकड़े, कृष्ण और सुदामा सारी रात पानी में इधर-उधर भटकते रहे। गुरुजी जब घर आए, तो उन्हें मालूम हुआ कि शिष्य ईंधन लेने गए हैं और अभी तक नहीं लौटे। गुरुजी ने समझ लिया कि बालक अवश्य वर्षा से हैरान होकर रास्ता भूल गए हैं। फ़ौरन् ढूँढ़ने निकल पड़े। सवेरा होने पर

देखा कि जंगल के एक कोने में दोनो शिष्य सिर पर लकड़ी रक्खे खड़े हैं और सर्दी के मारे थर-थर काँप रहे हैं। शिष्यों को देखकर गुरुजी गद्गद हो गए, और उनको छाती से लगाकर बोले—"पुत्रो, तुमने मेरे लिये बड़ा दुःख उठाया; तुमने अपनी जान की परवा न की, और मेरी सेवा करना ही सबसे बड़ा धर्म समझा। तुमने जिस सच्चे भाव से सेवा की है, उसके बारे में और तो क्या कहूँ, हाँ, इतना अवश्य कहता हूँ कि तुम्हारी विद्या सदा हरी-भरी रहे।"

ऊपर की कथा से यह उपदेश मिलता है कि गुरु की सेवा खूब मन लगाकर करनी चाहिए। सेवा करने में यदि कष्ट सहना पड़े, तो भी पीछे न हटना चाहिए। ऐसी सेवा से गुरु की अपेक्षा तुम्हें स्वयं अधिक लाभ है। इससे तुम्हारा मन दृढ़ होता है और तुम मन को पक्का रखकर कर्तव्य करना सीखते हो। जो सेवा करनी हो, वह सच्चे भाव से करनी चाहिए। कृष्ण ने लकड़ियाँ चीरीं, और कितनी उमंग से चीरीं! इस उमंग में सच्ची भक्ति का वास है। गुरु को भक्ति ही की ज़रूरत है, सेवा की नहीं। गुरु जो शिष्य से सेवा कराते हैं, वह इसीलिये कि शिष्य की भक्ति खिले, शिष्य के मन से छोटे-बड़े का भेद दूर हो, उसका अभिमान टूटे, और वह उमंग के साथ कर्तव्य का पालन करना सीखे। सेवा करने के ढंग से यह भी मालूम हो जाता है कि इसको विद्या की सच्ची चाह कितनी है। फिर, विचार तो करो कि विद्या कितनी अमूल्य वस्तु है! ऐसी अमूल्य वस्तु का जो दान करे, उसके साथ तुम्हें कैसे भाव से व्यवहार करना चाहिए? सांदीपनि ऋषि ने कृष्ण और सुदामा को पुत्र कहकर पुकारा, इससे तुम्हें यह मालूम होगा कि गुरु को शिष्य कितने प्यारे होते हैं।

गुरु तुम्हें विद्या देता है, जिसकी मदद से तुम आगे चलकर बड़े-बड़े काम कर सकोगे। इसलिये विद्या देनेवाले गुरु की ओर आज ही नहीं, जीवन-भर भक्ति-भाव रखना चाहिए; और इनका उपकार कभी न भूलना चाहिए। हिंदू-धर्म की एक बड़ी पुरानी पुस्तक में लिखा है—"माता को देवी के समान मानो, और पिता तथा आचार्य को देव के समान।"

४—भंगी गुरु

पहले मगध देश में श्रेणिक नाम का राजा राज करता था और उसका पुत्र अभयकुमार ही उसका मुख्य मंत्री था।

राजा के महल के आस-पास एक सुंदर बग़ीचा था, जिसमें गुलाब, चंपा, अंगूर, आम इत्यादि अनेक अच्छे वृक्ष फल-फूल से लदे खड़े थे। इसमें एक आम के पेड़ पर आम लगे देखकर एक भंगिन का जी ललचाया। अपने स्वामी से आकर कहा—"मेरा मन राजाजी के बाग़ के आम खाने को चाहता है, जैसे बने, वैसे मुझे खिलाओ।" इस भंगी को एक ऐसी विद्या आती थी, जिससे यह वृक्ष की डालों को नीचे झुका या ऊपर उठा सकता था।

इस विद्या के बल से वह एक रात को बाग़ के एक अच्छे-से-अच्छे आम के पेड़ के सब आम चुरा लाया और अपनी स्त्री को खिलाए। दूसरे दिन राजा की रानी घूमती हुई उस आम के पास आई और देखा कि पहले दिन संध्या-समय

जो रस-भरे आम लगे थे, वे नहीं हैं। इस पर उसे बड़ा खेद हुआ और उसने राजा से आम की चोरी की बात कही। राजा ने चोर पकड़ने का काम अभयकुमार को सौंपा। अभय-कुमार बड़ा बुद्धिमान् था। उसने रात को भेष बदल, शहर में फिरकर बड़ी होशियारी से चोर का पता लगा लिया। भंगी ने चोरी करना स्वीकार किया और अभयकुमार से अपनी उस गुप्त विद्या का हाल कहा। मंत्री ने यह वृत्तांत राजा से कहा। राजा बोला—"हे मंत्री, चोर को दंड देना हमारा धर्म है, और यह तो विद्या-बलवाला दुर्जन है, इसलिये अधिक भयंकर है, इसको भारी सजा मिलनी चाहिए।" यह सुनकर मंत्री ने राजा से कहा—"पहले इसकी विद्या तो सीख लीजिए, फिर जैसी आप उचित समझेंगे, वैसी ही सजा दूँगा।" राजा को यह बात ठीक मालूम हुई। उस भंगी को भूमि पर बैठाया, आप अपने आसन पर बैठा और उससे मंत्र सीखना शुरू किया। परंतु सब प्रयत्न निष्फल हुआ। सब कुछ करने पर भी राजा के चित्त में कोई बात न जमी। राजा बुद्धिमान् होते हुए भी, जब यह सीधा-सा मंत्र सीखने में सफल न हुआ, तो अभयकुमार ने नम्रता से कहा—"हे पूज्य पिता, आप अत्यंत विनय से विद्या ग्रहण कीजिए; क्योंकि विद्या तीन रीतियों से ग्रहण की जा सकती है—विद्या से, विनय से और द्रव्य से। इनमें से विचारवान् पुरुष विनय को ही श्रेष्ठ समझते हैं; इसके बिना दूसरे दोनो साधन पूरी तरह

सफल नहीं होते। इसलिये हे तात, आप इसे आसन पर बैठाइए और आप भूमि पर बैठिए। ऐसा करने से ही यह विद्या आपके चित्त में जमेगी। देखिए, जल ऊँची ही भूमि से नीचे की ओर जाता है।"

राजा ने भंगी को ऊंचे पद पर बैठाया और आप नीचे बैठकर पढ़ना शुरू किया। ऐसा करने से उसे तुरंत विद्या आ गई।

राजा को अब इस भंगी को फल चुराने पर सजा देनी चाहिए या नहीं? राजा का मन, जो पहले स्वार्थ से भरा हुआ था, विनयी बनने के कारण गुरु के लिये आदर से भर गया। इसलिये उसके चित्त में यह प्रश्न उठा ही नहीं। उसने भंगी को फ़ौरन् छोड़ दिया और उस दिन से अपने गुरु की तरह उसकी प्रतिष्ठा करने लगा।

(१) गुरु का सम्मान और आदर किए बिना विद्या नहीं आती।

(२) विद्यावान् ही गुरु हैं; भंगी से भी विद्या सीखने में न हिचकना चाहिए। परंतु ऐसा करने में स्वार्थ साध लेने की नीच दृष्टि नहीं रखनी चाहिए। भंगी गुरु में भी गुरुबुद्धि रखनी चाहिए, और उसके साथ विनय-पूर्वक व्यवहार करना चाहिए।

(३) पीछे जो कुछ माता-पिता के लिये आदर, प्रेम, सेवा और आज्ञापालन करने के बारे में कहा गया है, वह गुरु के बारे में भी समझ लेना चाहिए।

५—वचनामृत

(१) माता को देवी समान जानो; पिता और आचार्य को देव-समान जानो।

—तैत्तिरीय उपनिषद्

(२) अपने माता-पिता के साथ सम्मान-पूर्वक वर्ताव करो। हरएक मनुष्य अपनी माता और अपने पिता की चिंता रक्खे।

(३) बालको, ईश्वर में अपने मा-बाप को मानो।

—बाइबिल

(४) जिसने मा-बाप की सेवा की उसके लिये स्वर्ग का बीच का दरवाज़ा खुला है।

—क़ुरान

(५) अपने माता-पिता से कभी कड़ुवे वचन न बोलना, विनय-पूर्वक इनका आदर करना, और ईश्वर से कहना—"हे प्रभु, इन्होंने मुझे बालकपन में पाल-पोषकर बड़ा किया है, इसलिये हे नाथ, तू इनका कल्याण कर।"

—क़ुरान

(६) अपनी माता को किसी तरह नाराज़ मत करना।

—अवस्ता

(७) अपने माता-पिता को सबसे अधिक प्रिय जानना, क्योंकि जान, माल इत्यादि सब पदार्थ तुम्हें इनसे ही मिलते हैं।

—सिसरो

(८) अपने मा-बाप का आदर कर, और अपने संबंधियों का आदर कर, और बाक़ी लोगों में से उनके सद्गुण देखकर अपने मित्र पसंद कर।

—पाइथागोरस

(९) संबंध के अनुसार सदा कर्तव्य स्थिर होता है। अमुक पुरुष तुम्हारा बाप है; इसका आशय ही यह है कि तुम्हें उसकी रक्षा करनी चाहिए, सब बातों में उसे स्थान देना चाहिए, उसके क्रोध और शिक्षा दोनो ही के सामने सिर झुकाना चाहिए।

—ऐपिक्टेटस

(१०) कितने ही मनुष्य माता-पिता की सेवा का अर्थ केवल उनका भरण-पोषण करना समझते हैं; परंतु भरण-पोषण तो अपने कुत्ते और घोड़े अर्थात् पशुओं का भी किया जाता है। भक्ति बिना दोनो में अंतर ही क्या? भक्ति बिना भरण-पोषण सच्ची सेवा नहीं है।

—कन्फ्यूशियस

(११) एक मनुष्य के दो पुत्र थे। उसने पहले के पास आकर कहा—"बेटे, तू आज अपनी अंगूर की टट्टियों में जाकर काम कर।" उसने उत्तर दिया—"मैं तो नहीं जाने का।" तो भी पीछे से वह पछताकर गया। पिता ने दूसरे के पास आकर उससे भी वैसे ही कहा। उसने उत्तर दिया—"पिताजी, मैं जाता हूँ।" परंतु वह गया नहीं। तो उन दोनो में से बाप की आज्ञा किसने मानी?

—बाइबिल

(१२) इस संसार में कौन-सा पुरुष अपनी देह को उत्पन्न करनेवाले पिता के उपकार का बदला दे सकता है?.........जो पुत्र पिता के मन की बात ताड़कर काम करे, वह उत्तम पुत्र है। पिता के कहने से जो काम करे, वह मध्यम पुत्र है, श्रद्धा बिना जो काम करे, उसे अधम पुत्र, और जो पिता के कहने पर भी काम न करे, उसे अधमाधम—नरक—समझना चाहिए।

—भागवत

(१२) युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा—"धर्म (कर्तव्य) का मार्ग बड़ा विशाल है और इसकी शाखाएँ भी बहुत हैं, असंख्य धर्मों में सबसे श्रेष्ठ धर्म कौन-सा है, सो मुझे बताइए।"

भीष्म ने उत्तर दिया—"माता-पिता की भक्ति को मैं सबसे श्रेष्ठ धर्म समझता हूँ। तीनो लोक, तीनो आश्रम, तीनो वेद, तीनो अग्नि, जो कुछ भी कहो, सब माता-पिता में, और इनसे भी अधिक गुरु में मौजूद हैं। इन तीनो की भक्ति करने में जो नहीं चूकता, वह तीनो लोकों को जीत लेता है। जो पिता की भक्ति करता है, वह इस लोक से तर जाता है, जो माता की भक्ति करता है, वह स्वर्ग, और जो गुरु की भक्ति करता है, वह ब्रह्मलोक को तर जाता है। जिसने इन तीन का आदर-मान किया, उसने सबका किया; जिसने इनका अनादर किया, उसकी सब क्रियाएँ नष्ट हो गईं।

"वेद पढ़े हुए दस ब्राह्मणों से बढ़कर एक अच्छा आचार्य है, दस गुरुओं (आचार्यों) से बढ़कर पिता, और पिता से—बल्कि सारी पृथ्वी से—बढ़कर माता है। दूसरी तरह कहिए, तो विद्यादाता गुरु सबसे बढ़कर है, क्योंकि माता-पिता तो इस शरीर को जन्म देते हैं और गुरु का दिया हुआ जन्म दिव्य, अजर और अमर है, क्योंकि ज्ञान न कभी पुराना होता है, न कभी मरता है।"

—महाभारत

ऊपर के वचनामृत में से बालक की योग्यतानुसार थोड़ा-बहुत पढ़ाना चाहिए।

वचनामृत ८—१२ विशेष रूप से समझाने चाहिए।

(१) मा-बाप का आदर करने में सद्गुण-दुर्गुण न देखने चाहिए। (नं० ७) इन्होंने उपकार किया है या अपकार, ये कटु वचन कहते हैं या सज़ा देते हैं, वह उचित है या अनुचित, ऐसे सवाल नहीं उठाने चाहिए।

(२) सच्ची सेवा में भक्ति होती है (नं० १०) और सच्ची भक्ति मुख से कहे हुए कोरे शब्दों में नहीं, बल्कि काम में होती है। (नं० ११)

(३) वचनामृत (नं० १२) में कही हुई बात को इस ढंग से समझाना चाहिए कि बालक खूब समझ ले।

(४) कितने ही बालक पिता से तो डरते हैं, परंतु माता को कुछ नहीं गिनते, इसलिये शिक्षक को वचनामृत (८) तथा (१३) पर बालकों का ध्यान विशेष रूप से दिलाना चाहिए, और इसी के साथ माता के अतुल प्रेम तथा उपकार का वर्णन करना चाहिए।

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।"

अवतरण

बड़ों के प्रति आदर और श्रद्धा रखते हुए सेवा करना सीखोगे, तो आगे चलकर जगत् के प्रति आदर और श्रद्धा-पूर्वक सेवा करना आवेगा। बड़ों के आज्ञानुसार अपनी इच्छाओं को दबाओगे, तो बड़े होने पर नीति के मार्ग पर चलना तुम्हें कठिन न मालूम होगा। माता, पिता और गुरु की भक्ति सदाचार का मूल है।

परंतु माता, पिता और गुरु रात-दिन तुमसे सेवा कराना नहीं चाहते। तुम पढ़-लिखकर बड़े हो, सुखी हो, पराक्रमी हो, और संसार का कल्याण करो, यही उनकी इच्छा होती है और इसीलिये वे तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा करते हैं, विद्या पढ़ाते हैं और नीति के मार्ग पर चलाते हैं। इसलिये यदि उन्हें ख़ुश रखना, और अपना भला चाहना हो, तो विद्या सीखने में जी लगाओ।

तुम्हारा अभ्यास का समय ख़ासकर शरीर और बुद्धि को शिक्षित करने के लिये तथा सद्गुण की आदत डालने के लिये है, क्योंकि इन्हीं साधनों द्वारा तुम अपना और जगत् का भला कर सकोगे—रोगी, अपढ़, या दुर्गुणी मनुष्य अपना या दूसरे का क्या कल्याण कर सकता है?

शरीर नीति का (धर्म का) प्रथम साधन कहलाता है, इस-

लिये इसके संबंध में तुम्हारे क्या-क्या कर्तव्य हैं, उनका पहले विचार करना चाहिए।

बालको, यदि तुम्हें कोई एक सुंदर घड़ी दे, तो तुम उसको कितनी होशियारी से रखते हो। ऐसे ही परमेश्वर ने हमें यह मनुष्य-शरीर दिया है। इसे स्वच्छ, पवित्र, नीरोग रखना चाहिए। हमारा कर्तव्य है कि इसे मज़बूत, सहनशील, और इच्छित कार्य करने योग्य बनाएँ। शरीर के ये गुण उचित भोजन करने से, स्वच्छता के नियमों को पालने से, खेल-कूद और कसरत से और शुद्ध विचार, सरल स्वभाव और सादा जीवन रखने से प्राप्त होते हैं।
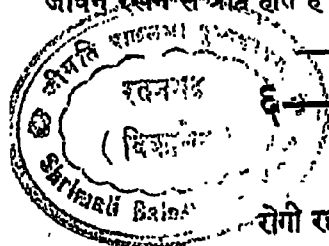
६—दो बहनें

अथवा

रोगी रहने के कारण

एक बार एक छोटी बहन बहुत दिनों बाद अपनी बड़ी बहन के घर मिलने गई। दोनो एक दूसरी से मिलकर बहुत खुश हुईं, लेकिन बड़ी बहन रोज़ बीमार रहने के कारण बहुत दुबली हो गई थी। छोटी बहन को उसकी सूरत देखकर चिंता हुई, पूछा—"तू इतनी दुबली कैसे हो गई है ?" बड़ी बहन ने जवाब दिया—"बहन, मैं तुझसे क्या कहूँ, हमारे घर-भर की यही हालत है। महीने-भर से तुम्हारे जीजाजी की तबियत भी कुछ खराब रहती है। डॉक्टर कहता है, जिगर मंद हो गया है। मैं अभी

बुखार से उठो हूँ। बालकों को खाँसी, पेचिश इत्यादि रोग रहा करते हैं। मालती शीतला में मर गई, यह तो तुझे मालूम ही है। इसलिये मैं ऐसी हो गई हूँ। क्या किया जाय? ग्रह-दशा!" यह सुनकर छोटी बहन बोली—"बहन, मेरा तो ऐसा अनुभव है कि अधिकतर अपने हाथ से किए हुए कामों से ही बीमारी होती है। देख, मैं तुझे कब से लिखा करती थी कि तू मालती को टीका लगवा दे, पर तूने कुछ ख़याल नहीं किया और अंत में वह बेचारी मर गई। देख, इन बालकों के शरीर में कितना मैल है। ये नंगे फिरते हैं और खाने-पीने में किसी नियम का पालन नहीं करते। साँझ को तू इन्हें टहलने के लिये भेजती है? नहीं भेजती होगी। तू भी बीमार पड़ती है, लेकिन दवा नहीं खाती। दवा खाना किसे अच्छा लगता ?' दवा की बहुत आदत तो अच्छी नहीं होती, लेकिन बीमार पड़ने पर ज़रूर खानी चाहिए। यदि तूने समय पर कुनैन खाया होता, तो इतनी तकलीफ़ न पाती। तेरी ही वजह से चुन्नी भाई बीमार पड़े हैं। तू बीमार है, इसलिये वे बाहर नहीं जाते और मन में उदास रहते हैं। इससे खाया हुआ अन्न पचता नहीं। सच पूछं तो मुझे तेरा यह घर ज़रा भी पसंद नहीं है। एक तो इसका फ़र्श गीला है, दूसरे इसमें हवा और रोशनी का प्रबंध जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। पाख़ाने और हौज़ की बदबू चारों तरफ़ से आया करती है। तेरा आँगन कितना गंदा है! इसलिये मेरा तो कहना यह है कि इस घर को बदल

डालो, किराया पाँच रुपए अधिक देना पड़े तो अच्छा। अंत में महँगा ही सस्ता पड़ेगा।"

बड़ी बहन—"बहन, तेरा कहना बिलकुल ठीक है; अब मुझे भी ऐसा मालूम होता है कि अपने दोष से ही मैं इतने दिन तक बीमार रही और अभी तक बीमार हूँ। मैं कल ही घर बदल डालूँगी, लेकिन मुझे यही ख़याल होता है कि जहाँ मैं जाऊँगी, वहीं मेरा भाग्य मेरे साथ जायगा।"

छोटी बहन—"बहन, नए घर में कुछ तो बीमारी पहुँचेगी ही, इसे अपनी अभी तक की भूलों का फल समझना। वहाँ पहुँचने पर तंदुरुस्ती में बहुत अंतर पड़ जायगा, इसलिये तू भाग्य के दोष निकालना छोड़ दे; अपना किया ही अपने को भोगना पड़ता है।"

(१) शिक्षक को इस प्रसंग में बालकों को आरोग्यता के नियम तफ़सीलवार समझाने चाहिए; जैसे—

(क) स्वच्छता (सफ़ाई) शरीर की, कपड़ों की, घर की, और सहन की।

(ख) ताज़ी और अच्छी हवा तथा रोशनी; और मामूली घर के ढंग।

(ग) निर्मल और निर्दोष जल।

(घ) पौष्टिक, निर्दोष और हलका भोजन।

(ङ) ऋतु के अनुसार कपड़े।

(च) खुली हवा में चलना-फिरना तथा काम-काज।

(छ) कसरत—आनंददायक तथा शरीर को कसनेवाली।

(२) प्राचीन समय में ऋषि लोग खुली हवा में आश्रम बनाते

थे और स्नान से शरीर को शुद्ध रखते थे। वे मनुष्य की उम्र को बहुत क़ीमती समझते थे और यह मानते थे कि उसे सौ वरस का होना चाहिए, ये वातें वालकों को वतलानी चाहिए।

(३) हाल ही में (१९११ ई० में) श्रीमान् सयाजीराव साहव गायकवाड़ ने वंवई में सेनिटरी एसोसिएशन के आगे कितने ही अंक दिखाकर वतलाया था कि वीमारी को रोकनेवाले इलाज काम में लाए जायँ, तो मनुष्यों की औसत उम्र में पंद्रह वरस वढ़ सकते हैं। ऐसा विद्वानों का कहना है। हिंदोस्तान में जो औसत उम्र है उसमें तो इससे दूनी यानी तीस वरस की वृद्धि हो सकती है, ऐसा कहना पड़ेगा। हमारे यहाँ मरनेवालों की संख्या आधी की जा सकती है और रोग से पीड़ितों की संख्या इससे दूनी घट सकती है। यानी एक वर्ष में चालीस लाख मरनेवाले और अस्सी लाख रोगी कम हो सकते हैं। यह वात शिक्षक को वालकों के मन में वैठा देनी चाहिए।

७—राजा और गड़रिया

अथवा

सादा जीवन

एक राजा वार-वार वीमार पड़ता था। एक दिन उसने अपने प्रधान से पूछा—"प्रधानजी, मेरी तवियत अच्छी नहीं रहती, इसका क्या कारण है? मैं सर्दी-गर्मी खाता नहीं, कपड़े जैसे चाहिए पहनता हूँ, भोजन भी अच्छा करता हूँ, फिर भी मुझे वार-वार बुख़ार, जुकाम आदि रोग हो जाते हैं, यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है।" प्रधान ने जवाव दिया—

"राजाजी, गुस्सा न हों, तो कहूँ ; आप बहुत चिंता में रहते हैं, इसीलिये आपकी तबियत अच्छी नहीं रहती। बग़ैर फ़िक्र किए सादे रहन-सहन से तबियत कैसी रहती है, इसकी मिसाल मैं आपको एक दिन दिखलाऊँगा।"

एक दिन राजा और प्रधान वन में घूमने निकले। वहाँ उन्होंने खेत में लाठी लिए, ढोर चराते हुए, एक गड़रिए को खड़ा देखा। प्रधान ने राजा से कहा—"महाराज, देखिए इस मनुष्य का शरीर कितना तंदुरुस्त है। रात-दिन खेत में गर्मी और सर्दी सहता है, मोटी रोटी और मठा खाता है, और झोपड़े में पड़ा रहता है, इसी का फल यह तंदुरुस्ती है।" राजा ने कहा—"प्रधानजी, मैं यह नहीं मान सकता। इसका शरीर स्वभाव से ही ऐसा मज़बूत है, इसलिये इसके तंदुरुस्त होने में कुछ आश्चर्य नहीं।" प्रधान ने कहा—"अच्छा महाराज, इसे अपने महल में ले चलिए।"

उस गड़रिए को राजा ने महल में रक्खा, बढ़िया-बढ़िया कपड़े पहनाए, भाँति-भाँति के भोजन खिलाए, और सुंदर मुलायम बिछाने पर सुलाया। इसके बाद एक दिन प्रधान ने राजा से कहा—"महाराज, आज उस गड़रिए को बुलाऊँगा।" गड़रिए को चढ़ने की संगमरमर की सीढ़ी पर ख़ूब गुलाब-जल छिड़का गया। गड़रिया राजा के पास आया। उसको ख़ूब मज़बूत देखकर राजा ख़ुश हुआ और प्रधान से कहा—"देखा, वह सूखी रोटियाँ अच्छी या हमारे पकवान?" प्रधान

ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन प्रधान ने गड़रिए को फिर बुलाया तो सिपाही आकर बोला—"पृथ्वीपाल, गड़रिए को सर्दी और बुखार हो गया है।"

ऐश-आराम से गड़रिए की तबियत ऐसी नाजुक हो गई कि एक दिन संगमरमर के ऊपर चलने से ही वह बीमार पड़ गया!

(१) तंदुरुस्ती का सुख राजा को भी दुर्लभ है।

(२) तंदुरुस्ती की नींव रखने के लिये हमारे पुरखों ने ब्रह्मचर्य के नियम बनाए हैं, जैसे कि सादा भोजन खाना, कड़े बिछौने पर सोना, गर्मी-सर्दी सहकर गुरु की सेवा करना, ऐश-आराम से इतनी दूर रहना कि पान तक न खाना, इत्यादि।

शिक्षक को ब्रह्मचर्याश्रम के सादे और कठिन जीवन की तरफ़ विद्यार्थियों का ख़ूब ध्यान दिलाना चाहिए, और स्पार्टन लोगों की जीवन-पद्धति में से कितनी ही बातें बतलानी चाहिए।

८—पढ़ना और खेलना

एक समय एक बड़ा पंडित खेल रहा था। उसे देखकर एक दूसरे पंडित ने उसकी हँसी उड़ाई। उसका घमंड दूर करने के लिये उस पंडित ने एक धनुष मँगाया, उसकी डोरी उतारी, उसे सीधा कर ज़मीन पर रख दिया, और उस दूसरे पंडित से कहा—"इस मेरी पहेली का अर्थ करो तो मैं तुम्हें विद्वान् समझूँ।" उस पंडित से वह पहेली न बूझी गई। बोला—"इसका अर्थ अब तुम्हीं बतलाओ, मेरी समझ में

नहीं आता।" तब वह पंडित बोला—"तुम्हारी समझ में नहीं आता तो मैं बतलाता हूँ, सुनो। धनुष की कमान सदा मुड़ी रखने से जल्द टूट जाती है, लेकिन अगर काम पड़ने पर ही झुकाई जाय, तो बहुत दिन तक चलती है और अधिक काम देती है। अब समझे मैं क्यों खेल रहा था!"

(१) "अति सर्वत्र वर्जयेत्"—अति सबकी बुरी होती है; पढ़ने, खेलने और आराम करने का उचित समय रखना चाहिए।

(२) एक ही काम करते रहने से दूसरा काम बिगड़ता है, इतना ही नहीं, बल्कि वह काम भी अच्छी तरह नहीं होता।

(३) सारे दिन पढ़ने और बुद्धि को ज़रा भी आराम न देने से बुद्धि थककर मंद पड़ जाती है, और ताज़ी बुद्धि के समान काम नहीं करती। इसी तरह खेलने-ही-खेलने से खेल का आनंद जाता रहता है। मिहनत के बाद खेलने और खेलने के बाद मिहनत करने से आनंद मिलता है।

६—श्रीकृष्ण की गोट

एक दिन श्रीकृष्ण वन में गोट करने का विचार करके प्रातः-काल उठे, वंशी के मधुर स्वर से अपने मित्र ग्वालों को जगा और बछड़ों का झुंड लेकर व्रज से बाहर निकले। उनके मित्र बालक अपनी-अपनी गेड़ी, बाँसुरी इत्यादि लेकर आनंद से उनके साथ हो लिए। सब लोग बछड़ों को चराते-चराते वन में जगह-जगह बाललीला करते थे। कभी फल, फूल, पत्ते, गुच्छे, मोरपंख इत्यादि से अपने शरीरों को सजाते, और कभी

बाँसुरी, गेंड़ी वग़ैरह को छिपाकर ढूँढ़ निकालने और कभी एक दूसरे के कंधे पर बैठकर दौड़ाने की कसरत करते थे। कोई कोयल, मोर, हंस इत्यादि के समान बोली बोलने और नाचने में मस्त था, कोई सेब, बेल इत्यादि फल गिरा रहा था, और कोई पेड़ के ऊपर बैठे हुए बंदरों की लटकती हुई पूँछों को खींचता था। कितने ही बालक पेड़ों पर से कूदते थे और कितने ही नदियों में मेंढकों के समान कूदते और पानी उछालते थे।

गोपों के बालक और श्रीकृष्ण खेलते-खेलते श्रीयमुनाजी के तीर आए। वहाँ भगवान् ने उनसे कहा—"भाइयो, इस यमुना का किनारा कितना सुहावना है; इसके ऊपर कोमल और निर्मल रेती बिछी हुई है; और पास ही मनोहर वृक्ष लग रहे हैं, जिन पर पक्षी आनंद से चहचहा रहे हैं। समय हो गया है और हम लोग भूख से व्याकुल हो रहे हैं, इसलिये यदि यहीं भोजन करें, तो कैसा? ये बछड़े पानी पीकर धीरे-धीरे हमारे पास ही घास चरा करेंगे।" यह बात सबको भाई। सबने बछड़ों को पानी पिलाकर हरी घासवाली ज़मीन में खुला छोड़ दिया और अपने भोजन के छीके ज़मीन पर बिछाकर आनंद से भोजन करने बैठे। उस समय भगवान् के साथ भोजन करने के लिये बैठे हुए सब गोप-कुमार ऐसे शोभायमान थे, जैसे कमल की कली के इधर-उधर कमल के पत्ते। कितने ही पुष्पों के, कितने ही पुष्पों की पँखड़ियों के, कितने ही पत्तों

के, कितने ही छाल के, कितने ही पत्थरों के, भोजनपात्र, पत्तल और दोने, बनाकर भोजन कर रहे थे। उस समय सब आपस में अपने-अपने भोजन का अलग-अलग स्वाद बतलाते थे, हँसते-हँसाते थे और भगवान् के साथ तरह-तरह से हँसी करते हुए, भोजन करते थे। इतने में बछड़े घास के लोभ से वन के अंदर दूर चले गए। ग्वालों ने देखा कि बछड़े वन में दूर निकल गए तो वे घबड़ा उठे। यह देखकर श्रीकृष्ण भगवान् ने उनसे कहा—"अरे भाइयो, घबड़ाओ मत। मैं तुम्हारे बछड़े अभी लाता हूँ।" यह कहकर वह बाक़ी भोजन हाथ में लिए चले और पहाड़ों, घाटियों, वृक्षों की कुजों और बड़ी-बड़ी गुफाओं में ढूँढ़ते हुए अंत में गायों और बछड़ों का ले आए। गोप-कुमार बैठे-बैठे इनकी राह देखते थे; उन्हें देखकर बहुत खुश हुए और कहने लगे—"तुम आ गए, यह ठीक हुआ, हम बैठे-बैठे तुम्हारी राह देखते थे; अभी हमने खाया भी नहीं है।" फिर सबने मिलकर भोजन किया और इस तरह वन में गोट कर घर आए।

(१) तंदुरुस्त शरीर में ही तंदुरुस्त मन रहता है, इसलिये छोटी अवस्था से ही ऐसे खेलों की आदत डालनी चाहिए, जिनसे शरीर सुधरे।

(२) जैसे कसरत से शरीर सुधरता है वैसे ही आनंदी स्वभाव से शरीर नीरोग रहता है। मन पुष्प के समान प्रफुल्ल हो, तो शरीर भी प्रफुल्ल होगा।

(३) शरीर तथा मन के विकास के लिये मित्रों की, और मित्रों में बराबरी के भाव से मिलने-जुलने की बहुत आवश्यकता है।

(४) शरीर और मन के विकास पर पर्वत और वन ः असर होता है, इसलिये यथाशक्ति वन की खुली हवा में खेल-कूद होना चाहिए।

१०—विष की कुप्पी

पहले बुद्ध भगवान् ने अपने उत्तम कर्मों से इंद्रासन पाया था। साधारणतः मनुष्य जिस समय अपने सुख में मग्न होता है, उस समय वह दूसरों के दुःख नहीं देखता ; पर बुद्ध भगवान् स्वर्ग के सुख भोगते थे, तो भी उनका मन उनमें डूबा हुआ नहीं था। जगत् के असंख्य जीवों के लिये उनका हृदय करुणा से भरपूर था, और इसलिये स्वर्ग का सुख छोड़कर, लोक के कल्याण के लिये वे अवतार लेने को तत्पर थे।

एक समय उन्होंने पृथ्वी पर दृष्टि डाली, तो देखा कि सर्व-मित्र नाम का एक राजा मदिरा से मत्त है और दुष्ट मित्रों के साथ बुरे कामों में लगा हुआ है। उसको देखा-देखी उसकी प्रजा को भी शराब का चसका पड़ गया है। इन जीवों को दुःख और पाप के मार्ग में प्रवृत्त देखकर बुद्ध भगवान् को दया आई। वह उनके उद्धार करने का निश्चय कर एक ब्राह्मण के रूप में, सर्वमित्र राजा के महल के पास होकर, एक सुशो-भित हीरों से जड़ी और पुष्पों से सजी मदिरा की कुप्पी लेकर, "मदिरा लो, मदिरा" ऐसी आवाज़ लगाते हुए, निकले। राजा महल की छत पर अपनी मित्र-मंडली-सहित बैठा मदिरा पीने

के विषय में तरह-तरह की बातचीत कर रहा था। नीचे मदिरा का नाम सुनकर वह बड़े हर्ष के साथ उठा और देखा तो एक तेजस्वी ब्राह्मण, सिर पर जटा और शरीर पर वल्कल धारण किए, हाथ में एक कुप्पी लिए जा रहा है। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ, ब्राह्मण को बुलाकर पूछा—"महाराज, इस कुप्पी में क्या है?" ब्राह्मण ने जवाब दिया—"राजा, इसमें न गंगाजल है, न दूध-मक्खन है, इसमें ऐसा पदार्थ है जो क्षण-भर में मनुष्य को पशु बना देता है। तराजू के एक पलड़े में इस लोक और परलोक के सब दुःख रक्खो और दूसरे में इस कुप्पी में से एक प्याला भरकर रक्खो, तो इसका एक ही प्याला सब दुःखों से अधिक होगा। जो इन सब दुःखों को सहन करना स्वीकार करे, उसे ही मैं यह शरबत बेचता हूँ। इसके पीने से मनुष्य का अपने मन और शरीर पर अधिकार नहीं रहता, मार्ग में वह अनाप-शनाप बकता, हँसता, नाचता, गिरता-पड़ता चलता है, और निर्लज्जता से व्यवहार करता है। इसी के पीने से यादव, जो ऐसे थे कि किसी के जीते न जीते गए और न किसी के मारे मरे, घड़ी-भर में आपस में लड़-कट-कर मर गए। बड़े-बड़े धनी और प्रतापी कुटुंब, पैसे-टके से ज़ेरबार होकर, दुराचार के मार्ग में पड़कर, दरिद्र हो गए, और भी कितनी ही तरह से, ऐसे मनुष्य, इस एक ही व्यसन की बदौलत मिट्टी में मिल गए।"

इतने शब्द सुनते ही राजा का मन एकदम बदल गया।

उसकी आँखें इस तरह खुल गईं, जैसे कोई गहरी नींद से जागा हो। उस दिन से उसने मदिरा का नाम लेना तक छोड़ दिया। राजा के ऊपर बुद्ध भगवान् के इस पवित्र उपदेश का असर पड़ने की बात पूरे राज-भर में फैल गई। प्रजा पर भी उसका प्रभाव पड़ा, और देश से शराबख़ोरी की लत जाती रही।

(१) मदिरा से हानि—

(क) शारीरिक हानि—मदिरा से उदर (पेट), यकृत् (जिगर), ज्ञानतंतु आदि में ख़राबी होकर, अजीर्ण (बदहज़मी), कंप, जलोदर, उन्माद आदि असाध्य रोग उत्पन्न होते हैं। मदिरा से शरीर में बल नहीं आता, उलटी, सर्दी तथा वायु होती है। यह बात युद्ध में लड़ती हुई फ़ौजों के अनुभव से, और अस्पतालों के प्रयोगों द्वारा साबित हो चुकी है।

(ख) रुपए-पैसे की बदइंतज़ामी और हानि—मदिरा से मन कमज़ोर हो जाता है और फिर यह ख़याल नहीं रहता कि उसका ख़र्च कहाँ से आवेगा। रुपए-पैसे के बारे में कुछ अंदाज़ नहीं रहता और दिन-दिन अंधाधुंध ख़र्च बढ़ता जाता है।

(ग) कुटुंब-जीवन का नाश—कुटुंब में निर्लज्जता आ जाती है; आपस की मर्यादा टूट जाती है। चाहे स्त्री-पुत्र प्राण के समान प्यारे हों, पर इसकी भी परवा नहीं रहती कि उनकी क्या दशा होगी।

(घ) मनुष्यत्व का नाश—मन कमज़ोर हो जाने से दिमाग़ बेक़ाबू हो जाता है, शांति-पूर्वक विचार करने की शक्ति नहीं रहती, भली-बुरी बात के जानने और उसी के

अनुसार व्यवहार करने की सामर्थ्य जाती रहती है। मतलब यह है कि आदमी का आदमीपन जाता रहता है, और आदमी जानवर बन जाता है।

(२) मद्यपान से शरीर के अवयव—पेट इत्यादि पर कैसा हानिकारक असर होता है, यह बालकों को समझाना चाहिए; और सुभीता होने पर मैजिक लैंटर्न या सादे नक़शों और चित्रों द्वारा यह बात बालकों को पूरी तौर से दरसानी चाहिए। इसी तरह मदिरा की दूकान और व्यसनी कुटुंबों की ख़राबियाँ, निर्लज्जता और करुणाजनक स्थिति, इन सब बातों को चित्रों तथा वर्णन से बालकों के सामने खड़ा कर देना चाहिए।

चित्र दिखलाने में इतनी बात याद रखनी चाहिए कि मदिरा के ऊपर घृणा उत्पन्न करने के लिये चित्र दिखलाए जाते हैं। चित्रों को बार-बार दिखाकर बालकों को इतना परिचित न कर देना चाहिए कि उनके भाव कुंद पड़ जायँ।

(३) मदिरा से जो दरिद्रता, पाप, रोग, पागलपन, आत्मघात, संतान में दोष इत्यादि बुरे नतीजे होते हैं, उनके अनेक उदाहरण पच्छिमी देशों में मिलते हैं, उनको बतलाना चाहिए; और इस बुरी लत को रोकने के लिये उन देशों में लाखों रुपयों के दान से कैसी-कैसी संस्थाएँ स्थापित की गई हैं और उनके द्वारा कैसी-कैसी कोशिशें हो रही हैं, यह बतलाना चाहिए।

(४) जैसी मदिरा है, वैसी ही भंग, अफ़ीम, तंबाकू वग़ैरह चीज़ें हैं। जैसे मदिरा भ्रष्ट करती है, वैसे ही ये दूसरी चीज़ें भी करती हैं, इस बात को बालकों के हृदय में ख़ूब भर देना चाहिए। मदिरा अधिक हानिकारक हो और दूसरी नशीली चीज़ें कम हानिकारक हों, तो इससे क्या? साँप के काटने से मनुष्य मर जाता है और बिच्छू के काटने से नहीं मरता, तो क्या बिच्छू के डंक के पास अँगुली धरनी चाहिए?

(५) बालको, तुममें से कोई मदिरा तो पीता नहीं, लेकिन मैं तुम्हें इतनी चेतावनी दिए देता हूँ कि आजकल बीड़ी-सिगरेट पीने का रिवाज हमारे देश में बहुत बढ़ा हुआ दिखलाई देता है; परंतु तुम्हें उस रास्ते नहीं जाना चाहिए। यह तुम्हारा इस उम्र में कर्तव्य है। बड़े होने पर तुम्हारा कर्तव्य यह होगा कि कितनी ही नीची जातियों में जो शराब का रिवाज पड़ गया है, उसे उपदेश करके दूर कराओ।

११—वचनामृत

मद्यपान और नशा

दोहे

मदिरा पीना है बुरा, सुन लो देकर ध्यान;
इससे यादव-वंश का, रहा न नाम-निशान।
जो पीता मदिरा वहाँ, रहता सदा अशुद्ध;
पिए गलाकर काँच को, तो शायद हो शुद्ध।
बरसों के जप पुन्य तप, व्रत तीरथ का दान;
पल में होते नष्ट हैं, करने से मधुपान *।
भ्रष्ट शराबी का सदा, पशुओं-जैसा हाल;
उसे न मिलना चाहिए, घर का कुछ भी माल।
पानी पी चांडाल का, हो सकता है शुद्ध;
पीकर किंतु शराब नर, रहता सदा अशुद्ध।
जो चांडाल न मधु पिए, करे विप्र मधुपान;
तो उत्तम चांडाल है, कहते श्रीभगवान।

गीत

बुरा है करना मदिरा पान;

---

* मधु=शराब।

जो धन देकर लें पागलपन, वे मूरख नादान।
लज्जा रहे न रहे चतुरता, दूर जायँ औसान;
बिगड़े काम सभी, घर डूबे, बचे न नाम-निशान।
इसमें कुछ भी सार नहीं यों कहते वेद-पुरान;
है गो-हत्या से बढ़कर मधु पीना पाप महान।

(गुजराती के कवि दलपतराम की कविता
का सारानुवाद।)

"स्वाध्यायान्मा प्रमदः"

"विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ;
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।"

अवतरण

अपना तथा दूसरों का भला करने के लिये पहला साधन गठा हुआ शरीर है, दूसरा साधन विद्या है। कहावत है कि मूर्ख मित्र से बुद्धिमान् शत्रु अच्छा। मूर्खता हृदय की उत्तम-से-उत्तम प्रीति को व्यर्थ, तथा कभी-कभी तो हानिकारक तक कर देती है। परोपकार करने की चाहे जितनी इच्छा हो, लेकिन यदि इस बात के समझने की काफ़ी शक्ति नहीं है कि क्या करने से सर्वसाधारण का हित होगा, तो भलाई के बदले बुराई हो जाती है। इसलिये नीति के आचरण में बुद्धि की आवश्यकता है। बिना शिक्षा के बुद्धि ठीक नहीं होती, इसलिये विद्या से इसका विकास करना चाहिए; इसमें संसार के विविध पदार्थों और व्यवहारों का ज्ञान भरना चाहिए। यह काम जिस सुगमता से बचपन और उठती जवानी में हो सकता है, वैसा बड़े होने पर नहीं हो सकता। अतएव बालको, इस अवस्था में कष्ट सहकर विद्याभ्यास करो।

१२—विद्यानुराग

[१]

कलीएंथिस नाम के एक ग्रीक विद्वान् के विषय में यह कहा जाता है कि वह वचपन में वड़ा निर्धन था और मजदूरी से अपनी गुजर करता था। उसे विद्या से ऐसा प्रेम था कि चाहे भले हो कम मजदूरी मिले और भूखा रहना पड़े, पर विद्वान् जीनो की पाठशाला जाने में वह एक दिन भी नहीं चूकता था। जैसे-जैसे उसका अभ्यास वढ़ता गया, उसे विद्या से प्रेम भी अधिक होता गया; यहाँ तक कि उससे यह भी सहन न हुआ कि दिन-भर मजदूरी में समय जाय और विद्याभ्यास में विघ्न पड़े। इसलिये उसने दिन में मजदूरी करना छोड़ दिया और सुवह-शाम एक माली की जगह वाग़ में पानी देने और रात को एक स्त्री का पीसना पीसने का काम अपने सिर लिया। पड़ोसियों ने देखा कि यह दिन को कोई काम नहीं करता, तो उन्हें शक होने लगा कि कहीं यह चोरी तो नहीं करता। न्यायाधीश के कान तक यह वात पहुँची। उसने कलीएंथिस को वुलाकर साफ़-साफ़ पूछा। कलीएंथिस ने उस माली और उस पीसने-वाली स्त्री को वुलाने की प्रार्थना की। जब वे दोनो वुलाए गए और उनसे पूछने पर उसकी वात मालूम हुई, तो न्यायाधीश का दिल भर आया और वह कलीएंथिस को इनाम देने लगा। परंतु कलीएंथिस ने नहीं लिया। पीछे से यही कलीएंथिस जीनो का उत्तम शिष्य और एक अच्छा दार्शनिक निकला।

[२]

हिलेल नाम के एक ग़रीब विद्यार्थी को कथा इस प्रकार है कि लड़कपन में उसके मा-बाप मर गए थे और उसका कोई सगा संबंधी या आश्रयदाता नहीं रहा था। उसका जो पाठ-शाला जाने को बहुत करता था, पर पाठशाला में दाख़िल होने पर रोज़ फ़ीस देनी पड़ती, वह कहाँ से आती ? आख़िर मज़-दूरी से पैसे जमाकर उनके आधे उसने फ़ीस के लिये निकाले और पाठशाला में दाख़िल हुआ। इस तरह थोड़े दिन तक तो काम चला; परंतु इसी बीच में यकायक जिस काम में वह मज़दूरी करता था, वह एकदम बंद हो गया और एक दिन तो मज़दूरी बिलकुल ही न मिलने से उसे खाने के लाले पड़ गए। अन्न बिना रहना तो उसे बहुत नहीं खला, परंतु पाठशाला के दर-वाज़े में बिना पैसे के दाख़िल न हो सकने से उसे बड़ा दुःख हुआ। पाठशाला को एक काँच को खिड़की टूटो थो। वहीं खड़ा होकर वह बाहर से हो पाठ सुनता रहा। इतने में शाम हो गई और बर्फ़ गिरने लगी, परंतु उसे कुछ ख़याल न रहा, यहाँ तक कि सर्दी से वह वहीं का वहीं जम गया। दूसरे दिन सवेरे, जब पाठशाला का काम शुरू हुआ, तब काँच को खिड़की से आनेवाली धूप को रुकते देखकर सब विद्यार्थियों की दृष्टि उस ओर गई। देखा तो उनका सदा का साथो, जो कल ग़ैरहाज़िर था, वही हिलेल—बर्फ़ में जम गया है ! तुरंत सब बाहर गए, हिलेल को उखाड़कर पाठशाला के अंदर लाए

और आग सुलगाकर उसके शरीर को खूब सेका। वह जी उठा और उस दिन से उसे बिना फ़ीस दिए ही पाठशाला में आने की आज्ञा दे दी गई। उसे जी उठने से भी ज़्यादा आनंद यह आज्ञा मिलने पर हुआ।

(१) गुरु के यहाँ हमारे पुरखे कितना कष्ट सहकर पढ़ते थे, यह सबको विदित है। इसलिये आज तुमसे दूसरे देश की दो-एक कथाएँ कही गईं, जिनसे तुम्हें मालूम होगा कि विद्या ऐसी अनमोल चीज़ है कि दुनिया में सभी जगह इसका समान आदर है।

(२) हमारे शरीर से हमारी आत्मा अधिक मूल्यवान् है, इसलिये शरीर की भूख-प्यास की अपेक्षा आत्मा की भूख-प्यास (विद्या, नीति, धर्म इत्यादि की इच्छा और प्रेम) बहुत बड़ी है।

(३) विद्या से इज़्ज़त मिलती है। संस्कृत के एक श्लोक में कहा है—"विद्वत्ता और राजा की पदवी, ये दोनो कभी बराबर नहीं समझी जा सकतीं। राजा केवल अपने देश में पूजा जाता है और विद्वान् तो देश-परदेश सभी जगह पूजा जाता है।"

(४) विद्या सब कल्याणों की नींव है। इससे लोक और परलोक, स्वार्थ और परमार्थ दोनो सुधरते हैं—(क) विद्या से संसार के व्यवहार में बड़ी सफलता मिलती है; (ख) अनपढ़ लोग कैसे पराधीन होते हैं, एक पत्र पढ़वाने या लिखवाने के लिये उन्हें दूसरों की ख़ुशामद करनी पड़ती है; (ग) बेपढ़े मज़दूर को पेट-भर रोटी नहीं मिलती, मामूली राज या बढ़ई को उससे ज़्यादा मज़दूरी मिलती है। विद्वान् इंजीनियर को तो बहुत ज़्यादा मिलती है। (विद्या के बल से ग़रीबी से बड़े-बड़े ओहदे पाए हुए देशी और परदेशी पुरुषों के दृष्टांत देने चाहिए।)

(५) विद्या का आनंद अनोखा है। हमारी निगाह सुंदर प्रकाश

देखकर उसी पर ठहर जाती है ; इसी तरह हमारी आत्मा विद्या से स्थिर हो जाती है। एक नया अक्षर लिखने या पाठ बाँचना आने से बालक कितना ख़ुश होता है !

(६) विद्या से लोक का कल्याण किया जा सकता है। संसार में विद्या से कैसे-कैसे हुनर निकले हैं, उनसे लोक का कैसा कल्याण हुआ है, और सच्चा उपकार करने की कैसी रीतियाँ निकली हैं इत्यादि बातें लिस्टर, पस्च्यूर आदि का उदाहरण देकर बतलानी चाहिए।

(७) इसलिये विद्या के प्रति दिल में बड़ी इज़्ज़त और इच्छा रक्खो और उसे पाने के लिये ख़ूब प्रयत्न करो। अच्छी पाठशाला में जाओ और गुरु की आज्ञा मानो। नियम और लगन से, उमंग और फ़िक्र से अभ्यास करो ; क्योंकि जो पढ़ेगा वही तरेगा।

(८) धर्म की नींव भी विद्या ही है। संसार के प्रति अपना कर्तव्य क्या है ? ईश्वर के प्रति अपना कर्तव्य क्या है ? ये बातें विद्या से ही अच्छी तरह समझ में आती हैं।

(९) विद्या का स्वरूप समझाते समय शिक्षक को चाहिए कि बालकों को यह समझावे कि विद्या केवल पुस्तकों में ही नहीं है, संपूर्ण विश्व में भरी हुई है। इसलिये जहाँ हमारा कर्तव्य यह है कि विद्वानों की पुस्तकें पढ़कर अपना ज्ञान बढ़ावें, वहाँ हमारा कर्तव्य यह भी है कि आँख-कान खोलकर और अपनी अक़्ल लड़ाकर संसार का अवलोकन करें।

१३—भील-कुमार एकलव्य

द्रोणाचार्य धनुर्विद्या में अत्यंत कुशल हैं, यह सुनकर हज़ारों राजा तथा राजपुत्र उनके पास यह विद्या सीखने आते थे। एक बार हिरण्यधनुष नाम के भील राजा का लड़का एकलव्य भी

आया। परंतु द्रोणाचार्य ने उसे इस भय से शिष्य बनाना अस्वीकार किया कि वह भील है और यदि धनुर्विद्या में बहुत प्रवीण हो गया, तो अपनी विद्या का दुरुपयोग करके लोगों को बहुत हैरान करेगा। एकलव्य द्रोणाचार्य के चरणों में प्रणाम कर वन में चला गया। वहाँ उसने द्रोणाचार्य का एक मिट्टी का पुतला बनाया और उसी पुतले के सामने अपने आप अस्त्र-विद्या का अभ्यास करना शुरू कर दिया। इस प्रकार अत्यंत श्रद्धा और पूर्ण एकाग्रता से अभ्यास करते-करते इस भील-कुमार की बाण चलाने की दक्षता बहुत बढ़ गई।

एक समय द्रोणाचार्य की आज्ञा लेकर पांडव और कौरव रथ में बैठकर वन में शिकार खेलने गए। उनके साथ एक कुत्ता भी था। उधर पांडव-कौरव शिकार के लिये वन में इधर-उधर भटकते फिरते थे, इधर यह कुत्ता रास्ता भूल गया और उस भील-कुमार के पास जा निकला। भील-कुमार का विचित्र रूप था; उसके शरीर पर मैल चढ़ा हुआ था और वह काला मृग-चर्म ओढ़े, सिर पर जटा धारण किए बैठा था। यह विचित्र दृश्य देखकर कुत्ता भूँकने लगा। तब भील-कुमार ने बाण मारने में अनोखी फुर्ती दिखलाई और एक के बाद एक—या एक साथ ही—सात बाण मारकर भूँकते हुए कुत्ते का मुँह बंद कर दिया, और वह भी इस सफ़ाई से कि कुत्ते के मुँह में एक भी बाण न छिदा। कुत्ता इसी दशा में पांडवों के पास आया। उन्हें यह देखकर बड़ा अचरज हुआ और वह बाण मारनेवाले को

होशियारी और सफ़ाई की प्रशंसा करने लगे। इस बाण चलानेवाले को जरूर ढूँढ़ना चाहिए, यह निश्चय करके वे वन में फिरने लगे और अंत में एकलव्य को ढूँढ़ निकाला। उन्होंने एक बार उसे गुरु के समीप देखा था, पर इस समय तो उसकी सूरत-शकल में बड़ा अंतर हो गया था। इस कारण वे लोग उसे पहचान न सके। उससे उन्होंने पूछा—"तू किसका पुत्र है और तेरा नाम क्या है?" एकलव्य बोला—"हे वीरो, मैं भीलराज हिरण्यधनुष का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ; मेरा नाम एकलव्य है। यहाँ धनुर्विद्या का अभ्यास करता हूँ।"

पांडवों ने घर पहुँचकर सब हाल अपने गुरु द्रोणाचार्य से कहा। द्रोणाचार्य को फ़िक्र हुई कि यदि एक भील का लड़का बाण-विद्या में इतना निपुण हो जायगा, तो अपनी इच्छा के अनुसार बुरे कर्म करेगा और उसे कोई जीत भी न सकेगा। इस कारण वे जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर एकदम वन में एकलव्य के पास गए। एकलव्य उन्हें आता देखकर सामने गया, उनके दोनों चरण छूकर साष्टांग प्रणाम किया और फिर गुरु का विधि के साथ पूजन कर हाथ जोड़कर बोला—"महाराज, मैं आपका शिष्य एकलव्य हूँ।" द्रोणाचार्य ने कहा—"हे वीर, जो तू मेरा शिष्य है, तो मुझे गुरु-दक्षिणा दे।" यह सुन एकलव्य बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला—"महाराज, आप जो आज्ञा करें, वही भेंट करूँ।" द्रोणाचार्य ने कहा—"अपने सीधे हाथ का अँगूठा काटकर दे।" द्रोण की

ऐसी कड़ी आज्ञा सुनकर एकलव्य ज़रा भी नहीं घबराया। उदार मन से, प्रसन्न मुख से, बिना ज़रा भी आनाकानी किए उसने अपने सीधे हाथ का अँगूठा काटकर द्रोणाचार्य को दे दिया!

उस दिन से एकलव्य ने अँगुलियों से ही धनुष खींचकर बाण चलाने का अभ्यास शुरू किया, पर अंत में अँगूठे की कमी के कारण ही वह धनुर्विद्या में अर्जुन से बढ़कर न हो सका।

(१) विद्या बाहर से सीखने से ही नहीं आती। श्रद्धा तथा एकाग्रता के परिणाम में जो विद्या अंदर से विकसित होकर निकलती है, वह बाहर से डाली गई विद्या से बढ़कर होती है।

(२) इससे यह न समझना चाहिए कि बिना गुरु के सिखाए विद्या नहीं आ सकती। स्वयं मेहनत करनी चाहिए, परंतु गुरु में पूर्ण भक्ति और दृढ़ श्रद्धा रखकर।

(३) साथ ही, शिक्षक को अभ्यास करने के ढंग के बारे में विद्यार्थियों को कितनी ही बातें बतलानी चाहिए; जैसे—

(क) नियमित समय पर पढ़ना—अभ्यास के लिये प्रातःकाल का समय उत्तम है; क्योंकि इस समय हमारा शरीर और मन दोनो ताज़े होते हैं।

(ख) समझकर पढ़ना—

सोच-समझकर जो पढ़े, वह समझे सब सार;
बिना विचारे घोखना, है बिलकुल बेकार।

(ग) पूरे ध्यान से पढ़ना।

(घ) उत्साह से पढ़ना।

(ङ) अपने आसरे रहकर पढ़ना।

१४—विद्या और नीति

कर्ण का नाम तुम सबने सुना होगा। वह इतना उदार था कि 'दानवीर कर्ण' के नाम से मशहूर हुआ है और अस्त्र-विद्या में तो वह ऐसा कुशल था कि उसका मुक़ाबला सदा अर्जुन के साथ होता था। परंतु उसमें कितने ही बहुत बुरे दोष थे। वह मंदबुद्धि और ईर्षालु था। दुर्योधन ने पांडवों पर जो अत्याचार किए, उसमें कर्ण ने हमेशा पाप-पूर्ण सम्मति दी। अर्जुन से उसे बड़ा द्वेष था। दूसरों से बढ़कर होने की इच्छा तो सबको ही होती है, और ऐसी इच्छा रखने में कोई बुराई भी नहीं, लेकिन कर्ण अर्जुन के साथ जो वैर-भाव रखता था, उसमें सिवा कीने के और कुछ नहीं था।

जब उसने सुना कि द्रोणाचार्य ने अर्जुन को ब्रह्मास्त्र चलाना सिखाया है, तो उसका हृदय जल उठा। तुरंत द्रोणाचार्य के पास जाकर कहा कि मुझे भी ब्रह्मास्त्र-विद्या सिखलाओ। लेकिन द्रोणाचार्य जानते थे कि यह शिष्य उस विद्या का दुरुपयोग करेगा, इसलिये उन्होंने उसे यह विद्या सिखाने से इनकार कर दिया।

कर्ण ने विचार किया कि द्रोणाचार्य भले ही मुझे यह विद्या न सिखलावें, मैं परशुराम से सीख आऊँगा।

यह सोचकर वह महेंद्र पर्वत पर गया, जहाँ परशुराम का आश्रम था। परशुराम क्षत्रियों के कट्टर दुश्मन थे। उन्होंने क्रोध से इक्कीस बार पृथ्वी से क्षत्रियों का निशान मिटा दिया

था। कर्ण यह बात जानता था, इसलिये उसने अपनी जाति छिपाई और परशुराम को प्रणाम कर बोला—"महाराज, मैं भार्गव-गोत्र का विद्यार्थी हूँ; मुझे ब्रह्मास्त्र-विद्या सिखलाइए।" परशुराम ने उसे ब्राह्मण जान ब्रह्मास्त्र-विद्या सिखाई। कर्ण इनकी सेवा करके इनका बड़ा प्यारा बन गया। एक समय शिष्य की गोद में सिर रक्खे गुरु सोते थे, इतने में एक कीड़ा कर्ण की जाँघ पर पहुँचकर मांस को काटने लगा। कर्ण को बड़ी वेदना हुई। परंतु इस डर से कि गुरु की निद्रा भंग हो जायगी, उसने यह असह्य दुःख धैर्य से सहन किया। कर्ण की जाँघ में से खूब रुधिर बहा और परशुराम के शरीर में लगा। उसकी सुरसराहट से परशुराम जाग उठे और चौंककर बोले—"अरे, मेरा शरीर रुधिर से अपवित्र किसने किया?" कर्ण ने अपनी जाँघ दिखलाई। उसमें कीड़े का किया हुआ घाव देखकर परशुराम ने सोचा कि यह दुःख ब्राह्मण तो सह नहीं सकता, यह शिष्य अवश्य क्षत्रिय होगा। आँखें दिखाकर कर्ण से सच्चा हाल बतला देने को कहा। कर्ण बोला—"महाराज, मैं ब्राह्मण और क्षत्रिय के बीच की सूत-जाति का हूँ। परंतु गुरु पिता की जगह है, इसलिये मैंने आपके गोत्र भार्गव को अपना गोत्र बतलाया। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।" परशुराम ने क्रोध से शाप दिया—"तू ब्रह्मास्त्र-विद्या सीखने के लोभ से झूठ बोला, इसलिये समय पड़ने पर तुझे यह विद्या याद न आवेगी। यह स्थान झूठ का नहीं है, इसलिये तू अब यहाँ घड़ी-भर भी मत ठहर।"

कर्ण अपने स्थान को चला गया। परशुराम के प्रताप से वह अस्त्र-विद्या में क़रीब-क़रीब अर्जुन के बराबर हो गया, परंतु महाभारत के युद्ध में अर्जुन के साथ लड़ते-लड़ते अंत समय में वह ब्रह्मास्त्र-विद्या में चूक गया और मारा गया।

(१) बिना नीति के विद्या नहीं फलती। झूठा आदमी चाहे जितनी विद्या सीख ले, तो भी किसी काम की नहीं; जैसा वह झूठा, वैसी ही उसकी विद्या झूठी समझनी चाहिए।

(२) शिक्षक को चाहिए कि बालकों को नीच ईर्षा और उच्च वैर का भेद समझावे।

(३) द्रोण ने विद्या सिखाने से इनकार किया, तब एकलव्य ने क्या किया, और कर्ण ने क्या किया, इसका मुक़ाबला करके बतलाना चाहिए।

१५—वचनामृत

तुम्हें चाहिए सदा बहन-भाई से मिलकर रहना;
सबसे मीठे बोल-बोलना, नहीं वचन कटु कहना।
मात-पिता-गुरु आदि बड़ों का मान सदा ही करना;
पढ़ने में मन खूब लगाना, कुपथ नहीं पग धरना।
जैसे छोटी नींव डालकर बड़ा महल बनवाते;
वैसे विद्या-नींव डाल शिशु में मनुष्यता लाते।
जो कुछ बचपन में पढ़ लोगे काम वही आवेगा;
भला बना सो भला, बुरा सो बुरा नाम पावेगा।
कभी न बोलो झूठ, मान लो उत्तम सीख हमारी;
बिना बात बक बक करने से होती है बस ख़्वारी।

सदा डरो तुम बुरे काम से पाप न रक्खो मन में ;
याद रहे, प्रभु व्याप रहा है सारे जड़-चेतन में।
रक्खो ध्यान उसी का हरदम सुधरे बुद्धि तुम्हारी ;
सेवा करो पिता-माता की नाम कमाओ भारी।

"सत्यं वद"

"अश्वमेधसहस्राणि सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्रेभ्यो सत्यमेवातिरिच्यते॥"

"दानसमान सुपुण्य नहिं, भजन बराबर जाप
सत्यसमानसुधर्म नहिं, मिथ्यासमनहिं पाप॥"

अवतरण

बालको, मैंने तुमसे आरंभ में कहा था कि शरीर और बुद्धि को शिक्षित करना और सद्गुण की आदत डालना ये नीति के साधन हैं। इनमें शरीर और बुद्धि की शिक्षा के बारे में तो मैंने तुम्हें कितने ही उपदेश दिए, अब मैं तीसरे साधन पर आता हूँ। सद्गुण ही नीति है; इससे शरीर और बुद्धि की शिक्षा के उपरांत मैंने जो सद्गुण की आदत को नीति के साधन के रूप में अलग बतलाया, उसका कारण यह है कि छोटी अवस्था से ही जब तुम सद्गुण की आदत डालोगे, तो बड़े होकर नीतिमान् बन सकोगे। नीति के वृक्ष के लिये शरीर और बुद्धि तो सिर्फ़ खेत और पानी की जगह हैं; उसका बीज तो सद्गुणी वृत्ति—सद्गुणी आदत—ही है। यह आदत डालने के लिये तुम्हारे पास दो बड़े-बड़े स्थान हैं, एक घर, और दूसरा पाठशाला। घर में बाप तथा भाई-बहनों के साथ, और पाठशाला में गुरु और सहपाठियों के साथ के बर्ताव में तुम्हें अभी से उच्च नीति की आदतें डालनी चाहिए। ये आदतें क्या-क्या हैं यही बतलाने के लिये यह नीति की पुस्तक है। इसमें पुरान और नई, इस देश की तथा परदेश की, गंभीर तथा मनोरंजक, मनुष्य, पशु, पक्षी तथा देवताओं की अनेक कथाएँ आवेंगी।

उनका अपने मन पर दृढ़ प्रभाव रहने देना और उनमें से उपयोगी सार निकालना। अगर उनमें बतलाए हुए सद्गुणों के अनुसार, अपने छोटे से ही जीवन में, अभी से आचरण करोगे, तो बड़े होकर तुम अपना और दूसरों का बड़ा भला कर सकोगे।

अनेक सद्गुणों के इकट्ठा मिलने से नीति का जीवन-तंत्र बनता है, लेकिन सबका राजा सत्य है, जिसके बिना समस्त जीवन में अंधेर मच जाता है। इसलिये मैं सत्य से ही आरंभ करूँगा।

१६—"नहीं झूठसम पाप"

धर्म-शिक्षा का समय हो गया, क्लास भर गया, और गुरुजी भी आ गए। इतने ही में एक विद्यार्थी हाँफता हुआ आया और जरा दम लेकर क्लास में घुसा। गुरुजी ने पूछा—"वेणीलाल, आज देर कैसे हो गई?" वेणीलाल ने जवाब दिया—"महाराज, मेरे घर की घड़ी ने मुझे धोखा दिया। अब मैं कभी उसके भरोसे नहीं रहूँगा।"

गुरुजी—बालको, तो आज का पाठ तो वेणीलाल की घड़ी से ही शुरू होने दो। बतलाओ वेणीलाल की घड़ी को कैसी कहना चाहिए?

बालक—बुरी।

गुरुजी—ठीक, यदि कोई पैसे पर पारा चढ़ाकर रुपए की जगह चलावे, तो उसके काम को कैसा बतलाया जायगा ?

बालक—बहुत बुरा ; यह धोखेबाज़ी है। मेरे घर के पास एक बुढ़िया आम बेचती थी, उसे कोई खोटा रुपया देकर ठग ले गया। वह बेचारी बहुत रोती थी।

गुरुजी—हम लोग जिस मकान में बैठे हैं, वह उत्तम ईंट-चूने से बना है, और लकड़ी भी अच्छी लगाई गई है, लेकिन फ़र्ज़ करो कि कोई भीतर बहुत कच्चा और सड़ा मसाला लगाए, या काग़ज़ की पोली ईंटें और काग़ज़ के पोले तख्ते बनाए, ऊपर से रंग-रोग़न चढ़ाए और घर की-सी शकल बनाकर हमें दे, तो वह हमें कैसा मालूम होगा ?

बालक—महाराज, उसमें तो हमारी जान को जोखिम होगी।

गुरुजी—अच्छा तो समझो कि जैसे वह घड़ी बुरी है, वह रुपया खोटा है, ईंटें बुरी हैं, वैसे ही झूठ भी बुरा है। हम अपने मुख से जो-जो शब्द निकालते हैं, उन्हें सच्चा समझकर लोग उन्हें मानते हैं और उन पर चलते हैं, इसलिये झूठे वचन बोलकर कभी किसी को भूल में न डालना, न किसी को दग़ा देना। ऐसा करने से हानि होती है और हमारा विश्वास जाता है। जिस मनुष्य का विश्वास उठ जाता है, उसे संसार में बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है। कोई उसकी सहायता नहीं करता और न उसके साथ काम करता है।

"समाज और कुटुंब के नियम को छिन्न-भिन्न करनेवाला, झूठ और दग़ा के समान दूसरा कोई दुर्गुण नहीं है। झूठ और दग़ा पहले हृदय में फ़र्क़ डालते हैं, जब हृदय में फ़र्क़ पड़ा, तब हाथ में भी फ़र्क़ पड़ जाता है, और जब हाथ में फ़र्क़ पड़ गया, तो फिर भला इमसे क्या काम सध सकता है ?"—(ल्यूथर)

(१) जो सच नहीं है, उसे बोलना या लिखना ही झूठ नहीं कहलाता। विना बोले और लिखे भी मिथ्या का पाप हो सकता है। तुम्हारे सामने कोई मनुष्य तुम्हारे वैरी की झूठी निंदा करे और तुम जानते हो कि वह झूठ कह रहा है, तब भी यह समझकर कि अच्छा है, तुम चुपचाप बैठे रहो, तो यह झूठ है। मामूली तौर से वह काम करना झूठ समझा जाता है, जिससे दूसरों को धोखे में डाला जाय, जैसे ग़रीब होकर अमीरों-जैसा ठाठ दिखलाना।

(२) जो यथार्थ नहीं है, उसे कहना झूठ का मामूली स्वरूप है। इसके सिवा ढोंग, ख़ुशामद, निंदा, फ़ुसलाना इत्यादि बहुत-से झूठ के ख़ास स्वरूप हैं। इनसे होशियार रहने तथा स्पष्टता, सफ़ाई, दृढ़ता और सच बोलने की हिम्मत इत्यादि गुणों का बालकों को ख़ास उपदेश करना चाहिए और इसी प्रसंग में, "कौआ और मोरपंख", "सियार और रंगरेज़", "व्याघ्रचर्म ओढ़कर निकलनेवाला गधा" इत्यादि मनोरंजक कहानियाँ तथा "केन्यूट और दरबारी", "हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद", "सत्यकाम जाबाल" इत्यादि गंभीर कथाएँ इस पुस्तक में से तथा बाहर से कहनी चाहिए।

(३) झूठ अनेक कारणों से बोला जाता है। कोई हँसी में झूठ बोलता है, कोई लोभ से बोलता है, कोई दूसरे को ख़ुश करने के

लिये बोलता है, कोई दया से आर्द्र होकर बोलता है इत्यादि। इस संबंध में "बाघ आया", "बाघ आया" वाली लड़के की कथा, "सोने की कुल्हाड़ी देखकर ललचाए हुए मनुष्य की कथा" ("पिता की कुल्हाड़ी" वाली कथा का बाक़ी का भाग), आगे लिखी वसु राजा की कथा इत्यादि कहनी चाहिए।

१७—सच्चा बालक

गीलान-निवासी हज़रत ग़ोसुल आज़म मुसलमानों के एक बड़े पवित्र साधु थे। उन्हें बालकपन से विद्या का शौक़ था। एक दिन उन्होंने अपनी मा से कहा कि मुझे बग़दाद जाकर पूरी तरह से विद्या सीखने की आज्ञा दो। उस समय बग़दाद विद्या और हुनर का केंद्र होने के अलावा अब्बासी ख़लीफ़ाओं की राजधानी भी था। माता ने पुत्र के मन का झुकाव इस ओर देख उसे छाती से लगाया और चालीस अशर्फ़ियाँ होशियारी से लड़के के कुर्ते में बग़ल के नीचे सी दीं, जिसमें ज़रूरत के वक़्त काम आवें। पीछे आशीर्वाद देकर चलते समय यह उपदेश दिया—"पुत्र, जा, तुझे ईश्वर को सौंपा। देख, सदा सच बोलियो और परमेश्वर को कभी मत भूलियो।" उन दिनों रेलगाड़ी तो थी नहीं, इसलिये यात्रा करने में बड़े कष्ट भोगने पड़ते थे। हज़रत ग़ोसुल आज़म एक क़ाफ़िले के साथ हो लिए और चलते-चलते जब हमदान शहर से आगे बढ़े, तब साठ लुटेरों ने क़ाफ़िले पर धावा किया और

सब सामान लूट लिया। हज़रत चुपचाप खड़े यह तमाशा देख रहे थे। इतने में एक लुटेरा उनके पास आकर बोला—"ओ लड़के, तेरे पास कुछ है कि नहीं? बता।" हज़रत ने जवाब दिया कि मेरे पास चालीस अशर्फ़ियाँ हैं। चोर ने विस्मित होकर पूछा—"कहाँ हैं?" उन्होंने जवाब दिया कि मेरे कुर्ते में बग़ल के नीचे सिली हुई हैं। चोर ने सोचा—छिपाई हुई चीज़ को, जो मुझे भी नहीं दीखती, कौन इस तरह साफ़-साफ़ बतलावेगा? शायद यह लड़का हँसी में कह रहा है। ऐसा सोचकर चोर आगे चला गया। थोड़ी देर में उसका साथी दूसरा चोर आया। जब उसके प्रश्न का भी यही उत्तर मिला, तो सब चोर बालक को पकड़कर सरदार के पास लाए और सब हाल कह सुनाया। सरदार ने कहा—"अच्छा इसकी बग़ल में से अशर्फ़ियाँ निकालो।" इस प्रकार बग़ल में से निकालने पर चमकती हुई चालीस अशर्फ़ियाँ निकलीं। सरदार बोला—"लड़के, तू अजब तरह का मनुष्य दीखता है। तूने चोर को भी अपने माल का पता बता दिया!" हज़रत ने सिर झुकाकर कहा—"मेरी माता ने चलते समय मुझे यह शिक्षा दी थी कि सदा सच बोलना और कभी परमेश्वर को न भूलना। बस, मैंने अपनी माता की आज्ञा के अनुसार काम किया है, और कुछ नहीं।"

लुटेरों के सरदार के मन पर इस बात का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा और वह अपने मन में कहने लगा—"अफ़सोस! मैं

किस तरह ईश्वर को मुँह दिखलाऊँगा !" उसी समय उसने अछता-पछताकर सब माल क़ाफ़ले को वापस कर दिया और लूट-मार का काम छोड़, भले रास्ते लगा।

(१) बालकों को सत्य के मार्ग में ले जाना माता-पिता का कर्तव्य है।

(२) गांधारी अपने पुत्र दुर्योधन को "तेरी जय हो" यह आशीर्वाद नहीं देती थी, बल्कि यह कहती थी कि "जहाँ धर्म हो वहीं जय हो।"

(३) चोर के साथ चोर बनना—शठ के साथ शठ बनना—यह अधम नीति की बात है। चोर भी अद्भुत सचाई देखकर अपने कर्मों पर लज्जित होता और अच्छे मार्ग पर चलने लगता है। इस प्रकार सत्य, बोलनेवाले और सुननेवाले दोनो को तारता है।

१८—वसु राजा का पक्षपात

पहले दक्षिण देश में अभिचंद्र नाम का राजा राज्य करता था। उसके वसु नाम का बुद्धिमान् कुमार था। राजा ने कुँवर को क्षीरकदंब नाम के गुरु के यहाँ पढ़ने भेजा। वहाँ यह राजकुमार गुरु-पुत्र पर्वत और दूसरे एक विद्यार्थी नारद के साथ-साथ पढ़ता था। कुछ वर्ष बाद राजा मर गया और गुरु संसार छोड़ वन में चले गए। इस प्रकार वसुकुमार राजगद्दी पर बैठा और पर्वत ने विद्या पढ़ाने का काम लिया।

वसु राजा हमेशा सत्य ही बोलता था और संसार में उसका बड़ा नाम था।

सत्य उज्ज्वल और निर्मल है और राजा का राज्य सत्य के

ही ऊपर निर्भर है, यह बतलाने के लिये राजा अपने सिंहासन को एक स्वच्छ स्फटिक की चौकी पर रखवाकर उस पर बैठता था।

एक दिन नारद मुनि पर्वत के घर आए। पर्वत कुछ शिष्यों को वेद पढ़ा रहा था। उसमें जहाँ 'अज' शब्द आया, वहाँ पर्वत ने उसका अर्थ 'बकरा' किया और यज्ञ में बकरे होमने का अर्थ समझाया। दयालु नारद को यह सुनकर खेद हुआ। उन्होंने पर्वत से कहा—"भाई, तेरी भूल है, गुरुजी ने 'अज' शब्द का अर्थ अ—नहीं, ज—जन्मता, यानी दुबारा जो न जन्मे—फिर पैदा न हो—ऐसा, यानी पुराना धान—किया था। इस अर्थ को छोड़कर तू ऐसा हिंसाबोधक अर्थ कैसे करता है?" पर्वत को पिता का किया हुआ यह अर्थ याद तो आ गया, पर यह समझकर कि शिष्यों के सामने नारद ने मुझे मूर्ख बनाया, वह मन में क्रोधित हुआ और अपनी भूल सुधारने के बदले हठ से बोला—"अज' का अर्थ गुरु ने 'बकरा' ही किया था। चलो अपने सहपाठी वसु राजा के पास चलकर इसका निश्चय करावें; जो झूठा निकले, उसकी जीभ काट ली जाय।" नारद ने यह बात स्वीकार कर ली।

जब पर्वत की माता को यह बात मालूम हुई, तो उसे बड़ी फ़िक्र हुई। अपने पुत्र को बुलाकर उसने कहा—"बेटा, मैंने भी तेरे पिता के मुख से वही अर्थ सुना है, जो नारद बतलाता है, इसलिये अपनी भूल स्वीकार कर नारद से माफ़ी माँग ले। तू

वसु राजा की साक्षी दिलाता है, पर वसु तो सत्य ही बोलेगा, इससे तुझे ही अंत में सजा मिलेगी।" पर्वत बोला—"चाहे जो कुछ हो, परंतु मैंने तो जो कह दिया, सो कह दिया, अब म पीछे हटने का नहीं। वसु राजा को समझा आओ कि मेरे पक्ष में ही बोले।"

पुत्र-स्नेह के वश माता वसु राजा के पास गई और उससे एकांत में पर्वत और नारद का वृत्तांत कहकर प्रार्थना की कि जैसे बने, वैसे पर्वत को बचाओ। पहले तो राजा ने झूठी साक्षी देने से इनकार कर दिया, पर अंत में गुरु-पत्नी के आग्रह और गुरु-पुत्र के स्नेह से राजी हो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल पर्वत और नारद सभा में आए और राजा से अपने विवाद का निर्णय करने की प्रार्थना की। राजा ने कहा—"पर्वत ठीक कहता है, गुरुजी ने 'अज' का अर्थ 'बकरा' ही किया था।" उसी क्षण राजा सिंहासन पर से गिर पड़ा और उसका आसन डगमगाने लगा। राजा और पर्वत का मुँह फीका पड़ गया, उनका झूठ खुल गया, और सब प्रजा ने उन्हें धिक्कारा।

(१) "शिष्यों के सामने मेरी बात हलकी होगी" ऐसे अभिमान से, अपमान के भय से पर्वत झूठ बोला, परंतु खूब याद रक्खो कि भूल सुधारने में कोई दोष नहीं। मनुष्य-मात्र से भूल होना मुमकिन है और यदि कोई भूल बतलावे, तो उसका उपकार मानना चाहिए। बेफ़ायदे ज़िद करना, या झूठ बोलकर अपनी बात को निभाना, या झूठी-झूठी दलीलों से झूठे को सच्चा बनाने का प्रयत्न करना, ये सब पाप हैं। साथ ही, हठ की चर्चा करो और उससे हानि

बतलाते हुए रावण का उदाहरण दो। रावण को अंत में अपनी भूल मालूम पड़ी थी। यदि वह मंदोदरी का कहा मानकर सीताजी को दे देता, तो उसका नाश न होता, पर उस दुष्ट ने हठ करके राज्य, प्राण और धर्म सब खोया।

(२) पुत्र के स्नेह के कारण माता ने पर्वत के असत्य को सत्य कर दिखाने में मदद की। पर असल बात तो यह है कि अपने सगों के बचाने के लिये भी न तो ख़ुद झूठ बोलना चाहिए, न दूसरे से बुलवाना चाहिए। "जैसे मैं पर्वत की माता हूँ, वैसे ही नारद की भी माता होगी, और जैसे मुझे पर्वत की जीभ कटने पर दुःख होगा, वैसे ही नारद की माता को नारद की जीभ कटने पर होगा" ऐसा विचारकर पर्वत की माता को सत्य की ही जय की इच्छा करनी चाहिए थी; असत्य को किसी प्रकार की मदद न करनी चाहिए थी। गांधारी दुर्योधन को "तेरी जय हो" ऐसा आशीर्वाद नहीं देती थी, परंतु "जहाँ धर्म हो, वहाँ जय हो" ऐसा आशीर्वाद देती थी। माता की धर्मनिष्ठा का यह उदाहरण ख़ूब याद रखने लायक़ है।

(३) वसु राजा ने गुरु-पत्नी के विनय और गुरु-पुत्र के स्नेह से सत्य छोड़ा। इस प्रकार दूसरों के लिये असत्य बोलने की इच्छा अकसर होती है, पर ऐसे अवसर पर मन को निर्बल नहीं होने देना चाहिए। क्योंकि ऐसे अवसर पर सच्ची, शुद्ध परोपकार बुद्धि नहीं होती। देखो पर्वत का भला करने में नारद का कितना नुक़सान होना संभव था! और फिर उसमें पर्वत का ही क्या भला होने को था? अधर्म से भी कभी किसी का भला हुआ है?

(४) किसी कार्य का तात्कालिक (तुरंत का) हानि-लाभ न देखना चाहिए; हरएक काम के कितने ही ऐसे गूढ़ और दूर के परिणाम होते हैं, जो हमारी नज़र में नहीं आते, परंतु अंत में वे हुए बिना

नहीं रहते—यह समझकर मनुष्य को चाहिए कि सत्य इत्यादि महान् नियमों का दृढ़ता से और ईश्वर में विश्वास रखकर पालन करे।

१६—नरो वा कुंजरो वा

अथवा

सत्यवादी का धर्मसंकट

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पाँचो पांडवों में कुंती के पुत्र युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ये तीन मुख्य थे। युधिष्ठिर ऐसे सत्यवादी और दयालु थे कि उनका नाम धर्मराज पड़ गया था। भीम अत्यंत बलवान्, परंतु क्रोधी था और अर्जुन धनुर्विद्या में अत्यंत कुशल और वीर हृदय का था।

महाभारत का युद्ध आरंभ हुआ। कौरव और पांडव तथा दोनो पक्ष के सेनापति एक के पीछे एक घायल हुए और मरे। अब कौरवों की तरफ़ से द्रोणाचार्य लड़ाई के मैदान में आए और पांडव-पक्ष के योद्धाओं का बुरी तरह संहार करने लगे। द्रोणाचार्य के समान युद्ध-कला में कुशल दूसरा योद्धा नहीं था और उन्होंने आधे दिन में ही पांडव-सेना का ऐसा नाश किया कि आधे दिन और भी वैसा ही युद्ध करते, तो निस्संदेह पांडव-सेना नेस्तनाबूद हो जाती और दुर्योधन जीत जाता। यह देखकर कृष्ण ने युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तीनो को बुलाकर कहा—"भाइयो, इस समय द्रोणाचार्यजी जिस जोश से लड़

रहे हैं, यदि वैसे ही जोश से शाम तक लड़ें, तो तुम्हारी संपूर्ण सेना में से एक मनुष्य भी जीता न बचेगा; इसलिये इनके ऊपर हिकमत के साथ शस्त्र चलाओ। "अश्वत्थामा (द्रोणाचार्य का पुत्र) मारा गया" ये शब्द इनके कानों में पड़ें, तो यह घबराकर शस्त्र छोड़ देंगे। अतएव यदि इस समय धर्म से जय अधिक प्रिय हो, तो ये शब्द इनके कानों में डालो।"

श्रीकृष्ण की यह सलाह अर्जुन को नापसंद आई, दयावान् युधिष्ठिर को ज़बरदस्ती राज़ी होना पड़ा और भीम ने बड़ी ख़ुशी से मान ली। अश्वत्थामा नाम का एक हाथी पांडवों की सेना में था। भीम ने उसे मार डाला और "अश्वत्थामा मारा गया" यह आवाज़ इस तरह लगानी शुरू की कि द्रोण सुन सकें। द्रोण अपने पुत्र के बल से परिचित थे और उन्हें भीम पर विश्वास नहीं था, इसलिये उन्होंने यह बात सच न मानी और पांडवों की सेना का जल्द संहार करने के लिये ब्रह्मास्त्र चलाने लगे। पांडव-सेना जलने लगी। यह देख, विश्वामित्र, वसिष्ठादिक ऋषि द्रोण के पास गए और समझाया कि युद्ध करना ब्राह्मण को शोभा नहीं देता और ब्रह्मास्त्र को काम में लाना, जिसकी रोक दूसरे पक्ष को नहीं आती, उचित नहीं। यह सुनकर द्रोण को अपने कर्म पर ग्लानि हुई और उन्होंने निश्चय किया कि यदि अश्वत्थामा सचमुच मारा गया होगा, तो शस्त्र छोड़ दूँगा। वे जानते थे कि युधिष्ठिर तीनो लोक के राज्य के लिये भी असत्य नहीं बोलेगा, उससे सच-सच बात

पूछने चले। वहाँ श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—"धर्मराज, द्रोणाचार्य कुपित हुए हैं और आधे दिन ऐसे ही लड़े, तो तुम्हारी सब सेना नाश कर देंगे। इसलिये द्रोण से सबको बचाओ। इस अवसर पर झूठ बोलना ही उचित है; क्योंकि जीव-रक्षा के लिये झूठ बोलने से पाप नहीं लगता।" भीम ने इस बात का अनुमोदन किया। जब द्रोण ने पूछा, तो धर्म-संकट में पड़े हुए युधिष्ठिर ने बड़े संकोच और आनाकानी से दबी जबान से कह दिया—"अश्वत्थामा मारा गया।" परंतु इस वचन में कुछ जय की इच्छा भी अवश्य थी।

युधिष्ठिर के शब्द सुनते ही द्रोण को विश्वास हो गया कि पुत्र जरूर मारा गया। तुरंत शस्त्र फेंक दिए और शोक से विह्वल हो गए।

पर इधर युधिष्ठिर का क्या हुआ? अभी तक उसका रथ पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर चलता था, वह पृथ्वी से छू गया!

(१) सच बोलना, पूरा सच बोलना, सिवा सच के और कुछ न बोलना चाहिए। "सत्य बोलूँगा, पूरा सत्य बोलूँगा और सिवाय सत्य के और कुछ न बोलूँगा" ऐसी प्रतिज्ञा कचहरी में गवाह से ली जाती है, इसका अर्थ इस जगह शिक्षक को समझाना चाहिए।

(२) आधे सत्य, दो अर्थवाले सत्य, या संशय उत्पन्न करनेवाले सत्य यद्यपि देखने में सत्य मालूम होते हैं, पर असल में असत्य ही हैं। असत्य को तो जल्द ही पकड़ सकते हैं, पर 'अर्द्ध' सत्य का पकड़ना कठिन है।

(३) युधिष्ठिर तक झूठ बोला, तो हमें क्या संकोच ? इस कथा का यह तात्पर्य नहीं है, क्योंकि महाभारत के कर्ता ने बार-बार सत्य ही का उपदेश किया है, और ऐसा कहा है कि इस असत्य वचन से युधिष्ठिर का तेज घट गया और अंत में उन्हें नरक भोगना पड़ा। (देखो "पांडवों का स्वर्गारोहण")

(४) युद्ध के समान कर्म असत्य, क्रूरता इत्यादि दोषों से भरे हैं, इसलिये उनका त्याग करना चाहिए । कर्तव्य-वश लड़ना पड़े, तो दूसरी बात है। तो भी उसके संग के पाप तो उसके साथ आते ही हैं, और उनका फल भी भोगना ही पड़ता है।

(५) जगत् का परिचालक—नियंता—परमेश्वर है। उसकी गूढ़ व्यवस्था में पुण्य से पाप का नाश हो, तो क्या आश्चर्य है ? पर कभी-कभी पाप से (युधिष्ठिर के असत्य से) भी पाप (कौरव-पक्ष) का नाश कराया जाता है। देखो, औरंगज़ेब की धर्मांध अनीति का शिवाजी के छल से नाश हुआ। पर इसलिये झूठ—छल—को कदापि अच्छा न समझना चाहिए। ईश्वर मनुष्यों को स्वार्थ, धर्म-संकट इत्यादि प्रसंगों की कसौटी पर कसता है और उस समय जो शुद्ध रहते हैं, वे ही ईश्वर को प्रिया हैं।

(६) दया भी बड़ा सद्गुण है और यदि युधिष्ठिर सिर्फ़ दया की ख़ातिर झूठ बोला होता, तो उसके इस काम की निंदा करते समय हमें कुछ विचार करना पड़ता। परंतु असल में दया के साथ पीछे से कुछ जय की इच्छा मिल गई थी ऐसा महाभारतकार ने लिखा है; इसलिये यह कार्य हमें नापसंद है। पाप करते समय मनुष्य जब यह सोचता है कि मैं किसी दूसरी रीति से कर्तव्य ही कर रहा हूँ, तब उसके काम में स्वार्थ, गुप्त रीति से, मिला ही होता है।

(७) युधिष्ठिर का अर्द्ध सत्य—असत्य—हमने नापसंद किया; परंतु इसके साथ ही न्याय की ख़ातिर यह भी याद रखना चाहिए कि

उसे सत्य और दया के बीच में एक महान् धर्मसंकट आ पड़ा था। वह असत्य बोला तो बड़े दुःखित मन से बोला, अर्थात् उसकी गर्दन सत्य की तरफ़ ही झुकी हुई थी; और इस असत्य को सत्य बतला-कर, कभी उसका समर्थन उसने नहीं किया। हमें उसका संपूर्ण जीवन देखना चाहिए, सब अंशों का अनुकरण करना चाहिए; उसके इस एक दोष का उसी तरह ख़याल न करना चाहिए, जिस तरह चंद्रमा के सामने आई हुई मक्खी का। (चंद्रमा के सामने हमारी आँखों के पास मक्खी आ जाय, तो वह कलंक-जैसी दीखती है)

(८) इस प्रसंग में से एक यह भी सार निकालना चाहिए कि जिस मनुष्य का सारा जीवन सत्य बोलने में ही गुज़रा था, जिसने उस दिन तक असत्य से अपनी जीभ कभी अपवित्र नहीं की थी, उसे भी उस विकट प्रसंग ने डिगा दिया, इसलिये सद्गुण का अभिमान न कर सदा नम्र रहना चाहिए और ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि हमें ऐसे विकट प्रसंगों से बचावे।

२०—वचन पालना (प्रतिज्ञापालन)

एक दिन मुसलमानों के सरदार हज़रत उमर कई बड़े आदमियों के साथ मसजिद में बैठे लोगों के झगड़े तय कर रहे थे। इतने में दो मनुष्य एक ख़ूबसूरत और जवान आदमी को पकड़कर लाए और अर्ज़ की कि हज़रत, इस दुष्ट ने हमारे बाप को मार डाला है; हमारा इंसाफ़ कीजिए। उमर ने जवान को तरफ़ देखकर कहा—"तू ने इन दोनों की फ़रियाद सुन ली अब इस बारे में तुझे क्या जवाब देना है, सो कह ?" उसने सिर झुकाकर अर्ज़ की कि बेशक मैंने ख़ून किया है और

दोषी हूँ। हज़रत उमर ने कहा—"जब तू अपना अपराध स्वीकार करता है, तो मेरा धर्म यही है कि तुझे मार डाले जाने का हुक्म दूँ।" जवान ने कहा—"हज़रत, हुक्म मानने में मुझे कोई एतराज नहीं, पर एक प्रार्थना है कि मेरा एक छोटा भाई है; वह अभी बालक ही है; उसके लिये मेरे बाप ने मरते समय कुछ सोना मेरे सुपुर्द किया था और मैंने वह सोना ज़मीन में गाड़ दिया है, इस ख़याल से कि जब मेरा भाई बड़ा होगा, तब उसे दे दूँगा। यह भेद सिवा मेरे और कोई नहीं जानता। इसलिये अगर आप मुझे तीन दिन की मुहलत दें, तो मैं वह अमानत अपने भाई को सौंपकर फिर हाज़िर हो जाऊँ।" हज़रत उमर बोले—"किसी को ज़मानत दे।" जवान ने हज़रत उमर और अन्य सज्जनों की तरफ़ देखा और अंत में अबुज़र साहब की तरफ़ इशारा कर बोला—"यह बुज़ुर्ग मेरे ज़ामिन हो जायँगे।" हज़रत उमर ने पूछा—"क्यों अबुज़र, इस जवान के ज़ामिन होते हो?" अबुज़र ने जवाब दिया कि मैं इस बात का ज़ामिन होता हूँ कि यह जवान तीसरे दिन यहाँ हाज़िर हो जायगा। हज़रत उमर ने उस युवक को छोड़ देने की आज्ञा दे दी।

जब तीसरा दिन हुआ, तो हज़रत उमर अबुज़र और अन्य लोग मसजिद में आकर दोषी की राह देखने लगे। समय जा रहा है, परंतु दोषी का अब तक पता नहीं। लोग अबुज़र साहब के लिये बड़े दुखी और व्याकुल होने लगे। इधर दोनों

फ़रियादियों ने आगे बढ़कर अबुज़र से कहा—"जनाब, हमारा अपराधी कहाँ है ? उसे यहाँ हाज़िर कीजिए।" अबुज़र ने बड़ी दृढ़ता से जवाब दिया कि यदि पूरे तीन दिन बीत जायँगे और अपराधी न आवेगा, तो उसके बदले में अपने प्राण देने को तैयार हूँ।

हज़रत उमर सावधान होकर बैठे और बोले—"अबुज़र, अपराधी न आया, तो मुझे निश्चय तुमसे ख़ून का बदला लेना पड़ेगा।"

अबुज़र एक बड़े पवित्र सज्जन और पैग़ंबर साहब के एक श्रेष्ठ सत्संगी थे। लोग उनके लिये चिंता करने लगे। कितनों ही की आँखों में तो आँसू आ गए। लोगों ने फ़रियादियों से कहा कि तुम ख़ून के बदले ख़ून न लेकर रुपए ले लो और संतोष करो। पर उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया और बोले कि हमें तो ख़ून के बदले ख़ून ही चाहिए।

सारी सभा बड़ी चिंता और उलझन में डूबी हुई थी। इतने ही में वह युवक, पसीने से तर, हाँफता हुआ आता दिखाई दिया। आते ही वह उमर साहब के निकट पहुँचकर सलाम करके बोला—"ख़ुदा का शुक्र है कि मैं समय पर आ पहुँचा। मैं अपने भाई को सोना दे आया और उसे पढ़ाने तथा शिक्षा देने के लिये मामा से कह आया। मेरे ज़ामिन को कुछ नुक़-सान न हो, इसलिये दौड़ता आया हूँ।" यह कहकर युवक आगे बढ़ा और अबुज़र का हाथ चूमकर कहने लगा—"साहबो,

मेरी और इनकी पहले से कोई जान-पहचान नहीं थी, पर इनको परोपकार इतना प्यारा है कि ये मेरे ज़ामिन बन गए।"

अबुज़र ने कहा—"बेशक, मैं पहले से इस युवक को बिलकुल नहीं जानता था; परंतु इसने जब इस भरी मजलिस में मेरे ही ऊपर विश्वास किया, तो इसको निराश करना मुझे अनुचित प्रतीत हुआ। मुझे इसका चेहरा देखकर ही मालूम हो गया था कि यह अपना वादा पूरा करेगा, इसीलिये मैं ज़ामिन हो गया।"

यह दृश्य देखकर फ़रियादियों को भी दया आई और कहने लगे—"हज़रत उमर, हमने ख़ून माफ़ किया। ईश्वर जाने क्योंकर ऐसे बात के धनी से ऐसा अपराध हो गया।" हज़रत उमर बड़े प्रसन्न हुए और इस तरह सत्यवादी युवक के जीवन की रक्षा हुई।

शिक्षक को (क) हरिश्चंद्र और विश्वामित्र तथा (ख) रेग्युलस की कथाएँ कहनी चाहिए।

२१—फुसलाना

[१]

एक व्यापारी ने यात्रा करने से पहले देवता की मानता मानी—"भगवान्, यदि मैं इस यात्रा से सकुशल घर आ गया, तो जो कुछ लाऊँगा, उसमें से आधा आपके अर्पण करूँगा।" व्यापारी परदेश में अपना माल बेचकर उसके बदले

में बहुत-से छुहारे और बादाम जहाज में भरकर घर लाया। वहाँ उसे देवता की वह मानता याद आई। उसने सोचा—"मैं जो लाया हूँ, उसमें से आधा भाग ही तो देवता के अर्पण करना है, तो इन बादामों के छिलके और इन छुहारों की गुठलियाँ जितनी निकलें, वही देवता के अर्पण कर दूँ, तो कैसा? ये वजन में मेरे माल की आधी होंगी।" यह सोचकर उसने बादाम के छिलकों और छुहारों की गुठलियों का ढेर देवता के आगे कर दिया। अच्छा, तो बतलाओ कि इस व्यापारी की मानता पूरी हुई या नहीं?

[२]

उपनिषद् में एक कथा है कि नचिकेता के बाप ने अपने यज्ञ में एक बुड्ढी, दुबली-पतली गाय का दान किया। क्या यह दान ठीक था? नचिकेता ने विचार किया कि पिता ईश्वर को फुसलाता है, उसका यज्ञ सफल न होगा, बल्कि उलटा पाप लगेगा, इसलिये उसने बाप से कहा—"पिताजी, शास्त्र में गाय का दान लिखा है, परंतु वह क्या ऐसी होनी चाहिए, जो भार-रूप हो? आप जो ऐसी गाय दे रहे हैं, इससे तो न देना कहीं अच्छा।" पिता क्रोधित होकर बोला—"तो आ तुझे ही यमदेव को दे दूँ।" यह कहकर क्रूर पिता ने अपने पुत्र को यमदेव की भेंट कर दिया। पर पुत्र घबड़ाया नहीं। उसने यमदेव के पास जाकर उन्हें प्रसन्न किया और वरदान में पिता की कृपा और ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान माँगा।

सिर्फ़ बाहर से जो सत्य दीख पड़े, वही असल में सत्य नहीं है; भीतरी मतलब का सत्य होना ही असल में सत्य है।

२२—ढोंगी गधा

एक बार जंगल में एक मरे हुए सिंह की खाल पड़ी थी। वहाँ एक गधा और गीदड़ फिरते-फिरते आ निकले। खाल को देखकर गीदड़ ने विचार किया कि मुझे तो यह बड़ी होगी, लेकिन इस गधे को पहनाई जाय, तो ठीक बैठेगी। इसको पहनकर यह वन का राजा हो जायगा, मैं इसका मंत्री बन जाऊँगा, और हम दोनो वन में मौज करेंगे। यह विचारकर उसने गधे से कहा—"मामा, यह खाल तुम पहनो और सिंह के समान बनकर बैठो। मैं तुम्हारा मंत्री बनूँगा और हम दोनो इस वन में राज्य करेंगे। हमें तरह-तरह का भोजन मिलेगा, और सब पशु-पक्षी हमारे अधीन रहेंगे। लेकिन मामा, तुम्हें गाने की बड़ी आदत है, इसलिये अगर तुमने भूलकर भी गाया, तो अपने को मरा हुआ समझना।" गधे ने विचार किया कि भांजा ठीक कहता है; भले ही गाने को न मिले, पर आज से मनुष्यों की मार तो न खानी पड़ेगी। यह सोचकर उसने गीदड़ की सलाह मान ली।

गधा तो सिंह की खाल पहनकर बैठा, और गीदड़ ने आस-पास के जानवरों पर यह जाहिर किया कि वन के राजा घूमते-फिरते यहाँ आए हैं। सब जानवरों ने इस वनराज तथा उसके

मंत्री को रोज ताजा शिकार भेंट करना शुरू किया। गीदड़ को तो उसमें खूब स्वाद आया, लेकिन गधा, जिसे कुम्हार के घर छिलके खाने की आदत पड़ी हुई थी, दिन-दिन सूखने लगा। पर इधर सिंह का पद भी छोड़ते नहीं बनता था ; इसलिये दिन में तो सिंह बनकर बैठता और रात को गाँव में जाकर पेट भर आता। इस प्रकार गधे और गीदड़ ने मिलकर बहुत दिनों तक ढोंग चलाया।

एक समय ऐसा हुआ कि मनुष्य के जुल्म से तंग आकर पशु इस नए सिंह के पास अपनी फ़रियाद लेकर गए और एक के पीछे एक ने गीदड़ की मारफ़त अपनी फ़रियाद पेश की।

बैल—मेरे बल से हल चलता है, मुझ पर कुल आधार,
मैं ही ढोता बोझ रोज—क्या गाड़ी क्या व्यापार,
न पल-भर का भी मिले करार—
गीदड़— यही है पशुओं की फ़रियाद।
घोड़ा—जान तोड़कर सेवा करता कभी न मानूँ हार,
मालिक को ले रस्ता काटूँ ऊपर करूँ सवार,
मगर तो भी सहता दुत्कार—
गीदड़— यही है पशुओं की फ़रियाद।
ऊँट—सदा सवारी में रहता हूँ, करूँ सफ़र मैं दूर,
पर न पिलाते हैं पानी तक मुझे मुसाफ़िर क्रूर,
करूँ मरते-मरते उपकार—
गीदड़— यही है पशुओं की फ़रियाद।

भैरवियाँ सुन-सुनकर राजाजी का मन गाने को तो बहुत

चलता था, परंतु प्रधानजी के उपदेशानुसार अपनी तबियत को रोक रहे थे। इतने में हाथी आया।

हाथी—राजाजी की अंबारी का मुझ पर है आधार,
सदा मुझी से सजे सवारी दमक उठे दरबार,
श्रेष्ठ हूँ पशुओं का सरदार—

पिछले शब्द सुनकर राजा डगमगा गया और गुस्से में आकर रेंक उठा—

अबे तू पशुओं का सरदार! भला रे पशुओं का सरदार!

सब पशु बोल उठे—अरे यह तो गधा है गधा! इसे मारो, मारो।

(१) बदमाशी और बेवक़ूफ़ी—इन दोनो के मिलने से ढोंग बनता है।

(२) ढोंग अंत में ज़रूर खुल जाता है और उसके फल भोगने पड़ते हैं।

(३) गधा आधा भूखा मरा और अंत में मार पड़ी। ढोंगी की ऐसी ही दशा होती है। भूखा रहकर अपने को बड़ा ज़ाहिर करना कैसा मिथ्या अभिमान है!

(४) बालको, गधे के ढोंग पर तो तुम हँसते हो, पर बात तो तब है, जब अपना ढोंग भी हँसकर दूर कर दो।

(५) मूर्ख होने पर पंडित होने का दावा करना, ग़रीब होने पर अमीरों की तरह रहना—ये सब ढोंग हैं। तुम कोई प्रश्न न समझे हो, पर यह कहने के बदले कि तुम नहीं समझे, तुम ऐसा ज़ाहिर करो कि समझ गए हो, तो यह भी एक छोटा-मोटा ढोंग है। ये सब झूठ के स्वरूप हैं।

(६) इसलिये अपने जीवन में जैसा हो, वैसा ही अपने को ज़ाहिर करो।

(७) शिक्षक को "कौआ और मोरपंख", "नक़ाल गीदड़" आदि छोटी-छोटी कथाएँ सुनानी चाहिए।

२३—कैन्यूट और दरबारी

पहले इँगलिस्तान में कैन्यूट नाम का एक बड़ा भला और प्रतापी राजा हो गया है। वह बड़ा बलवान् और नम्र था और ईश्वर से डरकर चलता था। उसके आस-पास बहुत-से ख़ुशामदी दरबारी जमा रहते थे। वे हमेशा उसकी झूठी प्रशंसा करके फ़ायदा उठाना चाहते थे; पर कैन्यूट को अपनी प्रशंसा पसंद न आती थी और वह उनके धोखे में भी नहीं आता था। एक दिन उसने विचार किया कि मूर्ख ख़ुशामदियों की ख़ुशामद की आदत छुड़ानी चाहिए। संध्या-समय राजा और दरबारी समुद्र के किनारे सैर करने गए। दरबारियों ने कहा—"महाराज, आपके बल का क्या कहना। आप पृथ्वी के ही नहीं, समुद्र के भी राजा हैं; समुद्र भी आपकी आज्ञा मानता है।" कैन्यूट को यह सुनकर क्रोध हो आया, लेकिन मुँह से कुछ न कहकर उसने एक कुरसी लाने की आज्ञा दी और उसको समुद्र के किनारे रखवाकर उस पर बैठा। धीरे-धीरे समुद्र की लहरें चढ़ने लगीं। तब कैन्यूट ने अपना राजदंड दिखाकर कहा—"अरे समुद्र, तू क्या

हमारी आज्ञा नहीं मानेगा ? जा, पीछे हट जा।" पर पानी बढ़ता ही चला आया और थोड़ी देर में राजा की कुरसी के आस-पास आ गया और राजा के पैर भीग गए।

राजा ने उन दरबारियों की तरफ़ देखकर कहा—"अरे मूर्ख ख़ुशामदियो, तुम समझते हो कि मैं तुम्हारी ख़ुशामद से धोखे में आ जाता हूँ ? कभी नहीं। पृथ्वी, जल, पर्वत इत्यादि सारी सृष्टि ईश्वर ने बनाई है और ईश्वर ही इसका राजा है ; मैं तो समुद्र की एक लहर को भी नहीं रोक सकता। इसलिये ईश्वर का सम्मान करो और उसकी सेवा करो।"

कहा जाता है कि उस दिन से कैन्यूट ने मुकुट उतारकर मंदिर में रख दिया, जिसमें लोगों को इस बात का ज्ञान हो कि ईश्वर ही बलवान् है, मनुष्य नहीं।

(१) ख़ुशामद झूठ है, अधम झूठ है, क्योंकि उससे दूसरे को मूर्ख बनाकर, उसके अभिमान और उसकी मूर्खता से फ़ायदा उठाने का यत्न किया जाता है।

(२) बहुत-से लोग लाभ की ख़ातिर नहीं, बल्कि आदत से लाचार होने के कारण ख़ुशामद करते हैं। ऐसे मनुष्य अपनी मर्यादा भूल जाते हैं।

(३) दूसरे के मुँह पर भाट की तरह उसकी सच्ची प्रशंसा भी करना अच्छा नहीं मालूम होता। पर मीठी और विनय-पूर्ण वाणी ख़ुशामद नहीं है। ऐसी वाणी दूसरे के लिये—मनुष्य-मात्र के लिये—सम्मान और प्रेम के भाव का चिह्न है।

(४) ख़ुशामदियों से होशियार रहना चाहिए। ऐसे मनुष्य दुश्मन से भी ज़्यादा बुरे हैं, क्योंकि दुश्मन से तो मनुष्य सदा होशि-

-चार रहता है, मगर ख़ुशामदी मनुष्य तो मीठे जाल में फाँसकर नाश करता या करा देता है।

(५) ख़ुशामदियों से दूर रहकर सच्चे हितचिंतक के कड़वे वचन सुनने की आदत डालनी चाहिए।

(६) धृतराष्ट्र ने सत्य और हित की कहनेवाले विदुर की सलाह नहीं मानी; रावण ने विभीषण और मंदोदरी की नहीं मानी; शिक्षक को चाहिए कि ये कथाएँ बालकों को सुनाकर उनका परिणाम दिखाए।

२४—झूठी ख़बर उड़ाना

एक खरही बड़ी डरपोक थी। पेड़ के पत्तों की खड़खड़ाहट तक से डरती और "अरे आकाश गिरा, अरे आफ़त आई" कहकर इधर-उधर हाँफती हुई दौड़ा ही करती। एक समय वह एक आम के पेड़ के नीचे खड़ी थी कि उसके पीछे सूखे पत्तों में एक आम की डाल गिरी। उसकी आवाज़ सुनकर उसे भय हुआ कि अवश्य आफ़त आई। वह वहाँ से फ़ौरन् भागी। रास्ते में एक खरगोश मिला। खरही ने कहा—"देखो भाईजी, आफ़त आई है, भागो, भागो।" ख़रगोश भागा। उसने यह बात दूसरे खरहे से कही; दूसरे ने तीसरे से कही; इस प्रकार हज़ारों खरगोशों में यह बात फैल गई। खरगोशों से हिरनों में, हिरनों से बकरों में, बकरों से भैंसों में, भैंसों से ऊँटों में, ऊँटों से हाथियों में, इसी तरह एक-एक करके सारी पशु-जाति में यह खबर फैल गई। अंत में वन के राजा सिंह के कान तक

पहुँची। सिंह ने सोचा—"ये सब डरपोक जीव हैं, कोई आवाज़ सुनकर डर गए हैं, पूछना चाहिए कि यह खबर आई कहाँ से?" हाथी से पूछा—"हाथीजी, तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि आफ़त आती है?" हाथी ने कहा—"राजाजी, मैंने आँख से कुछ नहीं देखा, मुझसे तो ऊँट ने कहा है।" ऊँट से पूछा, तो वह बोला—"राजाजी, मैंने आँखों से तो कुछ देखा नहीं, मुझसे तो भैंसे ने कहा था।" भैंसे से पूछा, तो उसने कहा—"राजाजी, मैंने तो कुछ देखा नहीं, बकरी ने मुझसे कहा था।" बकरी से पूछा, तो वह बोली—"राजाजी, मैंने तो कुछ देखा नहीं है, मुझ से हिरन ने कहा था।" हिरन से पूछा, तो वह बोला—"मैंने तो कुछ देखा नहीं, मुझसे तो ख़रगोश ने कहा था।" ख़रगोश से पूछा, तो उसने कहा—"राजाजी, मैंने तो कुछ देखा नहीं, मुझसे तो खरही ने कहा था।" खरही से पूछा, तो बोली—"राजाजी, मैंने आँखों से देखा है।" सिंह—"कहाँ?"—खरही—"उस वृक्ष के नीचे।" सिंह—"चल, बता।" ख़रही—"मुझे तो वहाँ जाने में डर लगता है।" सिंह—"जहाँ मैं हूँ, वहाँ डर कैसा? मैं तुझे अपनी पीठ पर बिठाकर ले चलूँगा।" सिंह खरही को पीठ पर बिठाकर वृक्ष के पास ले गया। वहाँ देखा तो वृक्ष की एक डाल नीचे पड़ी है। सिंह ने समझ लिया कि अवश्य इसी की आवाज़ से खरही डर गई है। डाल को उठाकर उछाला और वह फिर ज़मीन पर गिर पड़ी। फिर खरही से पूछा—"तुम्हारी आफ़त यही है कि कोई

दूसरी ?" खरही का डर निकल गया। उसने खरगोश से कहा—"भाई, आफ़त की बात झूठी है।" खरगोश ने हिरन से कहा, हिरन ने बकरे से, और ऐसे ही करते-करते सब वन में बात फैल गई और सब शांत हो गए।

(१) बहुत-से मनुष्यों को गप उड़ाने का बड़ा शौक़ होता है। जो जान-बूझकर हँसी के लिये ऐसा काम करते हैं, उनकी प्रायः कैसी दशा होती है, यह "बाघ आया" वाली कहानी से मालूम होगी।

(२) परंतु कितने ही मनुष्य ऐसे भोलेभाले होते हैं कि बिना छानबीन किए ही, नई बातों का विश्वास कर लेते हैं और फिर उसे दूसरों से बड़े इतमीनान के साथ कहते हैं। इस प्रकार वे दुनिया में बहुत-सी झूठी बातें फैला देते हैं। (शिक्षक को इस मौक़े पर "एक जाल में सौ साँप" के समान मनोरंजक कथाएँ कहनी चाहिए।)

(३) जान-बूझकर झूठ बोलना और धोखा देना तो महापाप हैं ही, किसी बात को बिना जाँच-पड़ताल किए कहना या उड़ाना भी बुरा है।

ऐसी गप्पों से हम स्वयं मूर्ख बनते हैं और दूसरों को भी मूर्ख बनाते हैं। कितनी ही बार तो बिना सोची हुई बहुत-सी हानियाँ हो जाती हैं। इसलिये विचार स्थिर करने और मुँह से बात निकालने में बहुत होशियार रहना चाहिए।

(४) मुख से बात निकालने से पहले अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए। एक बिगुलवाले को शत्रुओं ने लड़ाई में पकड़ा और उसकी जान लेने को तैयार हुए। वह बोला—"भाइयो, मुझे मत मारो, मेरा दोष नहीं है। मेरे हाथ में हथियार नहीं है, जिससे तुम्हें मालूम होगा कि मैंने किसी को भी नहीं मारा है और न मार ही सकता हूँ। सिवा इस बिगुल के दूसरी कोई चीज़ मैंने छुई तक नहीं,

मुझे व्यर्थ क्यों मारते हो ?" शत्रुओं ने उत्तर दिया—"यह तो ठीक है कि तू खुद नहीं मारता पर अपना यह भद्दा बिगुल बजाकर तू लोगों को उकसाता है, जिससे रुधिर की नदी बहने लगती है।"

२५—हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद

अथवा

सच बोलने की हिम्मत

दैत्यराज हिरण्यकशिपु के प्रह्लाद नाम का एक पुत्र था। पिता ईश्वर के नाम का कट्टर विरोधी था, पर पुत्र को छोटी अवस्था से ही ईश्वर से अत्यंत प्रेम था। प्रह्लाद जब पढ़ने योग्य हुआ, तब पिता ने उसे पाठशाला भेजा।

चढ़ सफ़ेद छोटी घोड़ी पर खड़िया पट्टा नौकर साथ,
जा पहुँचा बालक चटशाला और नवाया गुरु को माथ।
उसकी भोली शकल देखकर सुख पाया सबने मन में,
कौन जानता था वह क्या कर डालेगा बालकपन में।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारो का नाम पुरुषार्थ है, और इन चारो के ज्ञान की प्राप्ति को ही शिक्षा कहते हैं। पर इस दैत्य के राज्य में तो सबको केवल दो ही विषय सिखलाए जाते थे, अर्थ और काम, यानी रुपया कैसे पैदा किया जाय और सुख कैसे भोगा जाय। धर्म अर्थात् सदाचार, और मोक्ष अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति, इनका तो कोई नाम भी नहीं लेता था। प्रह्लाद को प्रचलित पढ़ाई में यह बड़ी कमी मालूम हुई। उसने अपने सहपाठियों को धर्म और मोक्ष का उपदेश देना शुरू किया।

एक बार हिरण्यकशिपु ने बड़े प्रेम से पुत्र को गोद में बिठाकर पाठशाला का सबक़ पूछा। प्रह्लाद ने अपना ईश्वर-संबंधी ज्ञान बतलाना शुरू किया। उसे सुनकर दैत्यराज बिगड़ा और शुक्राचार्य को बुलाकर कहा—"मेरे कुँवर को बुरे-बुरे विषय क्यों सिखाते हो? मुझे दीखता है कि तुम बहुत वृद्ध हो गए हो, इससे तुम्हारी बुद्धि बिगड़ गई है। मेरे पुत्र को अपने पुत्र शंडामर्क को सौंप दो और कह दो कि मेरे कुल के योग्य शिक्षा दे और पीटना भी पड़े, तो बेखटके पीटे।" शंडामर्क ने साम, दाम, दंड, भेद—अर्थात् दूसरे को कैसे फुसलाना, कैसे ललचाना, कैसे मारना, कैसे लड़ाना—ये चार विषय सिखाने शुरू किए। पर इन कपट और छल की बातों में प्रह्लाद का मन न लगा। जब फिर पिता ने उसकी परीक्षा ली, तो उसे प्रह्लाद ने ईश्वर का ज्ञान ही सुनाया। इससे हिरण्यकशिपु बहुत नाराज़ हुआ। क्रोध में आकर उसने पुत्र को गोद से पृथ्वी पर फेंक दिया और लाल-लाल आँखें निकालकर बोला—"अरे राक्षसो, यह लड़का मौत माँगता है; इसको मेरी नज़र के सामने से दूर ले जाओ और मार डालो, मार डालो।"

दिया हुक्म नौकर को—"इसको फ़ौरन् मारो ले जाकर,
ज़िंदा देखा तो तुमको मारूँगा सूली चढ़वाकर।
पुत्र नहीं, है पक्का दुश्मन, जो दुश्मन का लेता नाम,
अभी सामने से ले जाओ, नहीं यहाँ कुछ इसका काम।"
बुरी भयानक शक्ल बनाए ख़ूनी नौकर घिर आए,
बाँध ले चले कसकर उसको देख सभी जन घबराए।

पीट-कूट सागर में फेका और आग में झुलसाया,
लेता प्रभु का नाम किंतु वह कुशल सहित हँसता आया।

ऐसे अनेक अत्याचार किए पर प्रह्लाद नहीं डिगा। उसे हाथी के पैर से बाँधा, पहाड़ पर से गिराया, नदी में डुबाया, पत्थर से कुचलवाया, पर ईश्वर है और ईश्वर का ज्ञान ही सच्चा है, इस बात का आग्रह उसने नहीं छोड़ा।

हिरण्यकशिपु चकराया; उसे यह नहीं सूझ पड़ा कि क्या करना चाहिए। फिर पुत्र को बुलाया। पुत्र ने फिर भी अपना वही उपदेश जारी रक्खा। हिरण्यकशिपु बोला—

"अट्ठासी सहस्र ऋषि देखे, खाक त्रिलोकी की छानी,
मुझको दिया न ज्ञान किसी ने अब प्रह्लाद मिला ज्ञानी।
नहीं शर्म इसको आती है बनता मेरा गुरुवर है,
सब जग तो मेरे वश में है, मुझे काल का क्या डर है?"
तब बोला प्रह्लाद—"पिताजी, तुमने सब जग जीत लिया,
लेकिन पाँच शत्रु भीतर हैं, उन्हें न अब तक जेर किया।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह हैं, बढ़कर अहंकार जानो,
नहीं इंद्रियाँ जीतीं ग्यारह, इन रिपुओं को पहचानो।
करते रहे अगर तुम यों ही ऐसी कुटिल क्रूर करनी,
तो डूबोगे पाप-भार से, तर न सकोगे वैतरनी।"

पुत्र उसका भला चाहनेवाला है, यह बात दैत्य की समझ में न आई। उसने प्रह्लाद को खंभ से बँधवाया।

उसे पीटता हुआ असुर बोला कि बता तू ज्ञान तमाम,
अभी मारता हूँ तुझको या दिखा कहाँ है तेरा राम।

इसके उत्तर में प्रह्लाद ने कहा—

"मुझमें तुममें खड्ग खंभ में सबमें वही रम रहा राम,
उसके सूक्ष्म रूप के आगे हैं दोनो आँखें बेकाम।"
महाक्रोध से गर्जन करके और नेत्र दिखलाकर लाल,
खड़ा हुआ वह, जिससे काँपे दिग्गज और हिला पाताल।
कहने लगा—"मूर्ख, ले देखूँ किधर छिपा है तेरा राम।"
यों कहकर मारी खंभे में एक ओर से लात धड़ाम।
तब नृसिंह बोले भीतर से—"ज़रा न डरियो तू प्रह्लाद।"
लगे भागने लोग वहाँ से डरकर सुनते ही यह नाद।
फटा खंभ, हो गए प्रकट हरि, पेट दुष्ट का डाला फाड़,
वहीं गिरा वह मरकर, जैसे जड़ से कटा हुआ हो झाड़।

(१) सच कहने और करने की हिम्मत सब गुणों की नींव है।

(२) जो अपने को सत्य जान पड़े, उसे हिम्मत से कहना चाहिए; ऐसा करने में दुःख तो मिलता ही है। देखो प्रह्लाद के ऊपर कितने दुःख पड़े, और वह भी उसके पिता ने दिए, पर तो भी वह अंत तक वही कहा किया, जो उसे सत्य जान पड़ा। "साँच को आँच नहीं"—आँच हो भी तो क्या—"नभ टूटे, पृथ्वी गले, पर मत छोड़ो सत्य।"

(३) शिक्षकों को चाहिए कि विद्यार्थियों को हाल के भी ऐसे दृष्टांत दें, जिनमें धर्म और व्यवहार के संबंध में जगत् के महान् स्त्री-पुरुषों ने अपने ऊपर बड़े-बड़े ज़ुल्म किए जाने पर भी सत्यनिष्ठा प्रदर्शित की है—जैसे मीरा, नरसिंह, ल्यूथर, सोक्रेटीज़, ब्रूनो, गेलि-लिओ आदि।

(४) जो अपने को सत्य जान पड़े, उसे हिम्मत से कह देने के ऐसे बड़े और विकट अवसर तो किसी-किसी के ही सामने, सो भी बहुत कम, आते हैं, पर छोटे-छोटे अवसर तो सबके सामने रोज़ ही आते हैं। ऐसे मौक़ों पर प्रह्लाद के समान निर्भय मन रखना चाहिए।

उदाहरण के लिये, अफ़सर या कोई अमीर मित्र जिस समय तुम्हारी राय पूछे, तो उस समय तुमको चाहिए कि जो तुमको ठीक जँचे वही कहो। यह बिलकुल मत सोचो कि ऐसा करने से दूसरे को नाख़ुशी होगी अथवा उसका परिणाम तुम्हें भोगना पड़ेगा। सदा याद रक्खो कि दहकते हुए खंभ में भी ईश्वर है; संकट में भी ईश्वर का वास है।

(५) हठ और सत्यनिष्ठा का भेद भी शिक्षक को विद्यार्थियों को समझाना चाहिए। विभीषण तथा मंदोदरी की उत्तम सलाह न मानने में रावण का हठ आदि पुराने और नए दृष्टांत बतलाने चाहिए।

(६) सच्चा शौर्य किसमें है यह "अट्टासी......वैतरनी" इन पंक्तियों द्वारा बालकों को समझाना चाहिए (और देखो हल्दीघाट-संबंधी टिप्पणी)

(७) शिक्षा रुपया कमाने के लिये, या सुख भोगने के लिये, या संसार के व्यवहार में पक्का बन जाने के लिये नहीं; सदाचार और ईश्वर-भक्ति के बिना सारी शिक्षा धूल है।

२६—वचनामृत

(१) पृथ्वी सत्य से टिकी है, और आकाश भी सत्य पर टिका है।

—वेद

(२) सौ कुएँ खुदवाने से एक बावड़ी खुदवाना अच्छा है, सौ बावड़ी खुदवाने से एक यज्ञ करना अच्छा है, सौ यज्ञ करने से एक पुत्र अच्छा है, सौ पुत्र से भी सत्य श्रेष्ठ है।

हज़ार अश्वमेध यज्ञों की सत्य से तुलना की जाय तो सत्य ही बढ़कर निकलेगा।

सत्य ही ब्रह्म (वेद) है, सत्य ही तप है। सत्य से ही दुनिया टिकती है और सत्य से ही स्वर्ग मिलता है।

असत्य (झूठ) अंधकार का रूप है ; अंधकार से मनुष्य नीचे (नरक) जाता है।

प्रकाश स्वर्ग, और अंधकार नरक कहलाता है। सत्य स्वर्ग—प्रकाशरूप, और असत्य नरक—अंधकाररूप है।

जो सत्य है, वह धर्म है, जो धर्म है, वह प्रकाश है, जो प्रकाश है, वह सुख है; जो झूठ है, वह अधर्म है, जो अधर्म है वह अंधकार है, जो अंधकार है, वह दुःख है।

असत्य से अंधकार उत्पन्न होता है, अंधकार से घिरकर मनुष्य अधर्म करता है ; क्रोध, लोभ, हिंसा और असत्य से घिरे हुए मनुष्य इस लोक में या परलोक में सुख नहीं पाते ; वे अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्टों से दुखी होते हैं।

—महाभारत

(३) झूठ बोलने से मनुष्य हलका पड़ता है, उसकी निंदा होती है, उसका पतन होता है। इसलिये झूठ बोलना छोड़ देना चाहिए।

भले मनुष्य को चाहिए कि कभी झूठ न बोले, चाहे कैसी ही मामूली या हँसी की बात क्यों न हो। प्रचंड हवा से जिस प्रकार बड़े-बड़े वृक्ष गिर पड़ते हैं, वैसे ही झूठ से समस्त कल्याण का नाश होता है। जैसे बदपरहेज़ी करने से रोग उभड़ आता है, वैसे झूठ बोलने से वैर, झगड़े और अविश्वास आदि दोष फूट निकलते हैं।

डर से अथवा दूसरे को ख़ुश करने के लिये कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए। सत्य, ज्ञान और चरित्र की नींव है ; इसलिये जो सत्य बोलते हैं, उनके चरण की रज से पृथ्वी पवित्र होती है।

—हेमचंद्राचार्य

(४) वह मुसलमान नहीं, काफ़िर है, जो असत्य बोलता है,

वचन देकर तोड़ता है, तथा विश्वासघात करता है। इस्लाम क्या है? सच्ची वाणी और ख़ैरात।

—हज़रत मुहम्मद

(५) झूठी बात न कहना; झूठी गवाही देकर पापी की मदद न करना।

—बाइबिल

(६) दान समान सुपुण्य नहिं, भजन समान न जाप ;
सत्य समान सुधर्म नहिं, नहीं झूठ सम पाप ।

—दलपतिराम

(१) प्रकृति में जहाँ देखो वहाँ सत्य-ही-सत्य भरा है; प्रकृति किनकी-भर असत्य का भी सहन नहीं करती।

(२) जैसे ईश्वर की सृष्टि सत्य से पूर्ण है, वैसे मनुष्य का व्यवहार भी सत्य से भरा हो, तभी टिक सकता है।

(३) सत्य, ज्ञान और सुख का झरना है; असत्य, अज्ञान और दुःख का गढ़ा है। सत्य का सीधा और तेजस्वी मार्ग पकड़ना चाहिए; असत्य की अँधेरी गली में नहीं जाना चाहिए।

(४) जैसे पहले माता-पिता के प्रति सम्मान के मन, वाणी और कर्म, ये तीन रूप कहे थे, वैसे ही सत्य को भी तीन आकारवाला समझना चाहिए।

(५) घर में, पाठशाला में, बाज़ार में, दूकानदारी में, राजदरबार में, पुस्तकों में, समाचार-पत्रों में और लच्छेदार बातों में, सभी जगह सदा सत्य ही विराजमान हो तो हमारा जीवन कैसा निर्भय, सुखमय और प्रकाशमय हो जाय, यह बात शिक्षक को विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष करके समझानी चाहिए।

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।"

"दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।

"उद्यम, उद्यम, उद्यम, बस उद्यम ही सबसे बढ़कर है। 'कर्म' बिचारा क्या कर लेगा, वह उद्यम का अनुचर है।"

अवतरण

बालको, सत्य के ऊपर हमारे सब व्यवहारों का कैसा आधार है और उस पर से डिग जाने के कैसे-कैसे प्रसंग आ जाते हैं, यह विषय मैंने तुमसे विस्तार-पूर्वक कहा। खूब याद रखना कि सत्य का जीवन सादा और सीधा, पौरुष और निर्भयता का जीवन है ; उसके ऊपर तुम्हारे संपूर्ण जीवन का आधार है।

अब मैं एक दूसरा सद्‌गुण लेता हूँ, जिसकी महिमा, तुम देखोगे कि, दूसरी तरह से सत्य के बराबर ही है। जैसे सत्य के बिना जगत् के सब व्यवहारों में अंधेर मचा रहता है, वैसे ही इस गुण के बिना भी सारा व्यवहार निष्फल हो जाता है।

२७—स्वाश्रय

अथवा

अपने ऊपर भरोसा करना

गुरुजी—बालको, देखो उस घोंसले में क्या है ?

पहला बालक—चिड़िया है।

गुरुजी—चिड़िया के साथ कोई और भी है ?

पहला बालक—हाँ महाराज, चिड़िया के बच्चे हैं।

गुरुजी—बच्चों के साथ चिड़िया क्या कर रही है ?

पहला बालक—उसकी चोंच में दाना रखती है।

गुरुजी—चिड़िया की चोंच में कौन रखता है ?

पहला बालक—कोई नहीं, चिड़िया तो अपने आप उड़कर दाना खाती है और थोड़ा-सा अपने बच्चों के लिये लाती है।

गुरुजी—बेचारे बच्चे कैसे पराधीन हैं ! खैर, बड़े होंगे, तो अपने आप उड़कर दाना खा आवेंगे और अपने बच्चों को इसी तरह दाना खिलावेंगे। बालको, तुममें से किसी के छोटा भाई है ?

दूसरा बालक—हाँ महाराज, मेरे दो महीने का भाई है।

गुरुजी—वह चलता-फिरता भी है ?

दूसरा बालक—नहीं, इतना नन्हा-सा बच्चा कहीं चलता है ? अभी तो झूले में ही पड़ा रहता है; मेरी मा उसे गोद में लिटाकर दूध पिलाती है, तब वह पीता है।

गुरुजी—किसी के दो बरस का भाई भी है ?

तीसरा बालक—हाँ महाराज !

गुरुजी—वह कैसे चलता-फिरता है ?

तीसरा बालक—मेरी मा उसे अँगुली पकड़कर जैसे चलाती है, वैसे ही चलता है।

चौथा बालक—महाराज, मेरे अढ़ाई बरस का भाई है,

उसकी अँगुली छोड़ दो, तो भी डगमग-डगमग करता हुआ चलता है और चलते में हँसता जाता है।

गुरुजी—अच्छा बालको, तुम्हें यदि कोई गोद में सुलाकर दूध पिलावे और अँगुली पकड़कर चलावे, तो तुम्हें कैसा मालूम हो?

बालक—(हँसकर) नहीं महाराज, हम क्या कोई छोटे बच्चे हैं? हमें तो चलने की अपेक्षा दौड़ना पसंद है। छुट्टी में उस बेरी के ऊपर चढ़कर हाथ से बेर गिराना और खाना जैसा अच्छा मालूम होता है, वैसा घर का पका हुआ भोजन भी नहीं मालूम देता।

गुरुजी—शाबाश, बालको, इस समय तुममें जो अपने आप उद्योग और पराक्रम करने का उत्साह है, उसे तुम बेर गिराने और दौड़ने-उछलने में दरसाते हो; बड़े होने पर उसी को नीति के मार्ग से धन कमाने और जगत् में आगे आकर दुनिया के फ़ायदे के लिये बड़े-बड़े काम करने में दिखलाना। उसके साथ यह भी याद रखना कि जैसे असत्य से दूषित विद्या कर्ण को नहीं फली, वैसे ही स्वाश्रय से कमाया हुआ धन यदि स्वार्थ के लिये ही ख़र्च किया जाय, तो उस स्वाश्रय में भी धूल पड़ी।

२८—लवा और उसके बच्चे

जाड़ा शुरू हुआ, ख़ूब ठंड पड़ने लगी और गेहूँ के खेत

अच्छी तरह पक गए। नाज कटने लगा। मनोहर पटेल और उसका लड़का भी सवेरे अपने खेत में गए और ठंड अधिक पड़ने के कारण धूप में मौज से बैठकर बातचीत करने लगे।

मनोहर—जयसिंह, अब तो गेहूँ काटना शुरू किया जाय, तो ठीक हो; देख, मूला का खेत कट चुका।

जयसिंह—हाँ, हम भी कल काट डालें?

मनोहर—जो तू आज रात को अपनी बाखर में सबसे कह आए, तो कल सवेरे सब यहीं खेत में इकट्ठे हो जायँ और हाथों-हाथ सब गेहूँ कट जाय।

जयसिंह—आज रात को मैं सबसे कह आऊँगा।

इस खेत में लवा का एक घोंसला था। उसमें बैठे हुए बच्चों ने बाप-बेटे की बातें सुनीं और बहुत घबराए। रात को जब मा घर आई, तब उन्होंने उससे कहा—"मा, कल सुबह इस खेत का मालिक अड़ोसी-पड़ोसियों के साथ खेत काटने आवेगा, इसलिये हमें दूसरी जगह ले चल।" मा बोली—"बेटा, मुझे तुम्हारी पूरी-पूरी फ़िक्र है; तुम जरा भी मत घबराओ; कल खेत नहीं कटेगा।"

जयसिंह अड़ोसी-पड़ोसियों को खेत काटने आने का निमंत्रण दे आया था, और बाप-बेटे खेत में बैठे सबके आने की राह देख रहे थे, पर पहर-भर दिन चढ़ गया और कोई न आया।

मनोहर पटेल ने चिढ़कर लड़के से कहा—"जयसिंह, हमारे

अड़ोसी-पड़ोसी किसी काम के नहीं; उनके भरोसे रहने से कुछ नतीजा नहीं। आज तू भूले काका के घर कह आइयो; उनके घर के सब लोग हमारे ऊपर बड़ा प्रेम रखते हैं; वे जरूर आ जायँगे।"

दूसरे दिन की बात भी बच्चों ने सुनी और सुनकर बहुत घबराए। लेकिन रात को मा से कहा, तो वह बोली—"बच्चो, डरो मत, कल भी खेत नहीं कटने का।"

दूसरे दिन बाप-बेटे संगी-साथियों की राह देखते हुए खेत में बैठे रहे। पहर-भर दिन चढ़ गया, पर उनमें से कोई न आया। अब तो मनोहर पटेल बहुत चिढ़ा और बोला—"जयसिंह, बिना आप मरे स्वर्ग नहीं दीखता; आज ही खुरपी तैयार करा ला। कल सवेरे मैं और तू मिलकर सारा खेत काट डालेंगे।"

बच्चों ने यह बात सुनी और शाम को जब मा आई, तो उससे कही। मा ने कहा—"बच्चो, कल सवेरे खेत ज़रूर कटा जायगा; इसलिये चलो, किसी झाड़ी में घोंसला बनाकर रहें।"

दूसरे दिन पटेल और जयसिंह ने मिलकर सारा खेत काट डाला। सच है—'नहिं बल आप समान और नहिं जल मेघ समान,' 'दूसरे की आशा, सदा निराश।'

(१) "कोई मेरी मदद नहीं करता।" यह कहकर दूसरों का दोष नहीं निकालना चाहिए, क्योंकि सबको अपने-अपने काम रहते हैं।

(२) स्वाश्रय से अपनी सामर्थ्य का भान होता है, मन आनंद में रहता है, कार्य-सिद्धि के लिये किसी का मुँह नहीं तकना पड़ता, और दुनिया के ऊपर भार रूप नहीं होना पड़ता।

(३) अपने आप काम करने की आदत डालने से आलस्य उड़ जाता है, काम करने में कुशलता आती है, और हरएक काम निश्चित समय पर होता है।

(४) शिक्षक को चाहिए कि विद्यार्थियों की आदत, बस्ता बाँधने, पेंसिल बनाने, स्लेट धोने, शब्दों का अर्थ निकालने से लगाकर, अपना हरएक काम अपने आप करने की डाले।

२६—हुसेनखाँ को खिरनो

गरमी के दिनों में हुसेनखाँ प्रातःकाल एक खिरनी के वृक्ष के नीचे ठंडक में सो रहा था। इतने में वृक्ष के ऊपर से पक्षी ने दो-चार खिरनियाँ उसके पास गिराईं। मियाँ का जो खाने को चाहा, लेकिन लंबा हाथ करके उठावे कौन? इसी समय ऊँट के ऊपर बैठा हुआ एक राहगीर वहाँ से निकला। हुसेन-खाँ ने आवाज़ लगाई—"अबे ऊँटवाले, ज़रा नीचे उतर के मेरे मुँह में यह खिरनी तो डाल दे।" मियाँ का आलस्य देख-कर ऊँटवाला मन में हँसा और बोला—"मियाँ, ऊँट के ऊपर से तो मैं उतरने का नहीं।" मियाँ बोला—"अबे तू तो बड़ा अहदी मालूम होता है।" ऊँटवाले ने मन में हँसकर इतना कही दिया—"अहदी मैं हूँ कि तू है?"

(१) हम तो आलस्य में पड़े रहें और दूसरे हमारी मदद करें—ऐसा कैसे हो सकता है?

(२) आलसी का उपकार करना भी पाप है, क्योंकि ऐसा करने से यथार्थ में भले के बदले हम उसका बुरा करते हैं।

(३) यह एक मनोरंजक कथा मालूम होती है, पर इसमें सत्य बड़ा गंभीर है । हमारे पास करने लायक़ हज़ारों काम पड़े रहें, तो भी हम उनसे लाभ नहीं उठाते । यह आशा व्यर्थ है कि परदेशी व्यापारी उन्हीं कामों को हमारे लिये कर दें और लाभ सब हमको दे दें । ऐसी आशा रखना भी अहदीपन में, हुसेनख़ाँ की खिरनी खाने की इच्छा से किसी तरह कम नहीं है ।

३०—नागदत्त

अथवा

कमाऊ पूत

पहले कुसुमपुर में नागचंद्र नाम का एक बड़ा व्यापारी रहता था । उसका एक लड़का था, जिसका नाम नागदत्त था । एक बार शहर में एक धनवान् सेठ ने जैन-मंदिर में प्रभु की अष्टांग-पूजा की और इस काम में उदार हृदय से बहुत-सा धन ख़र्च किया । नागदत्त के मन में इस पूजा का उत्सव देखकर यह बात समाई कि मैं भी बड़ा होकर ऐसा ही करूँगा । पिता से कहा—"जब मैं बड़ा हूँगा, तो ख़ूब धन कमाऊँगा और जैसी पूजा अमरचंद सेठ ने की है, वैसी ही करूँगा । लेकिन मैं तुम्हारा धन नहीं लूँगा ।" बाप बहुत ख़ुश हुआ । बाप का धन लड़का ले, इसमें कोई आश्चर्य नहीं ; धन लेकर बढ़ावे तो उसका नाम है ; लेकिन सच्चा पराक्रमी पुत्र वही है, जो अपने आप परिश्रम करके अपनी बुद्धि से ही कमावे ।

नागदत्त ने पढ़ा-लिखा और कुछ बड़ी उम्र का होने पर व्या-

पार में लग गया; पर बचपन से ही उसके मन में अपने आप कमाने और पराक्रम करने के विचार उठा करते थे, इसलिये उसे चलता हुआ काम पसंद न आया। उसने सोचा कि परदेश जाकर व्यापार करूँ और धन कमाकर स्वदेश में लाऊँ। एक दिन उसे बाजार में एक ब्राह्मण एक श्लोक कहता हुआ दीखा। श्लोक का मतलब यह था, "जो करने योग्य न हो, उसे कंठ में प्राण आने पर भी न करना चाहिए, और जो करने योग्य हो, उसे कंठ में प्राण आ जायँ, तो भी पूरा किए बिना न रहना चाहिए।" नागदत्त के हृदय में यह श्लोक चुभ गया; खुश होकर ब्राह्मण को पाँच सौ मुहरें इनाम में दीं और दूसरे ही दिन पचास जहाजों का बेड़ा तैयार कर वह परदेश गया और अच्छी तरह कमाई कर, जहाज भरकर घर की तरफ़ रवाना हुआ। रास्ते में उसका जहाज रेती में जा अड़ा! वहाँ पहले से दूसरे कितने ही जहाज पड़े थे और उनमें के लोग समुद्र में गिरकर आत्मघात करने को तैयार थे। इतने में नागदत्त अपने जहाज में वहाँ जा पहुँचा और उनको निराश देखा, तो वही श्लोक सुनाकर उन्हें आत्मघात करने से रोका। फिर अपने जहाज में से उन्हें जल तथा भोजन दिया। पर प्रश्न यह था कि इस रेती से कैसे निकला जाय।

सुवर्ण-द्वीप के राजा ने तोतों का एक झुंड इसलिये पाल रक्खा था कि यदि कोई इस चक्कर में फँस जाय, तो तोते उसके पास खबर पहुँचावें। यह झुंड उस चट्टान के ऊपर रहता था

और वहाँ किसी मनुष्य के आते ही तुरंत राजा के पास जाकर खबर दे आता था। नागदत्त ने एक तोते के पंजे में चिट्ठी बाँध दी; वह राजा के पास पहुँची। राजा को यह ख़बर पढ़कर भोजन भी नहीं भाया। तुरंत ग्राम में मनादी करवा दी कि "जो मनुष्य जहाज़ों को चक्कर में से निकालेगा, उसे मैं सोने की हज़ार मुहरें इनाम में दूँगा।" एक मल्लाह ने बीड़ा उठाया और जहाज़ों के पास जा पहुँचा। उसने नागदत्त से कहा—"भाई, इस चक्कर में से छूटने की सिर्फ़ एक तरकीब है। इस पहाड़ी की चोटी पर एक जैन-मंदिर है; उसमें मारुंड नाम के लाखों दरियाई पक्षी रहते हैं। यदि कोई इस पहाड़ी पर चढ़कर मंदिर का घंटा बजावे, तो ये पक्षी उड़ें, और उनके उड़ने से जो पवन चले वह जहाज़ों के मस्तूलों में भरे और उससे जहाज़ इस चक्कर में से निकलें।" पहाड़ी के ऊपर जाने का मार्ग बड़ा विकट था; ज़रा पैर चूके तो सीधा समुद्र में! इसलिये यह कठिन काम करने को जाने की हिम्मत दूसरे किसी की तो हुई नहीं, नागदत्त साहस करके पहाड़ी के ऊपर चढ़ा और घंटा बजाकर फ़ौरन् जहाज़ पर लौट आया। वे सब पक्षी उड़े। और जहाज़ चक्कर से बाहर निकल आए। घर पहुँचकर नागदत्त ने प्रभु की अष्टांग पूजा करने की अपनी लड़कपन की इच्छा पूरी की। उसने स्वयं ही अतुल धन नहीं कमाया, परदेश में कैसे-कैसे व्यापार होते हैं, सो भी अपने देशी भाइयों को बतलाया, और इस तरह उसने उनके लिये व्यापार का एक नया दरवाज़ा खोल दिया।

(१) बचपन से ही उत्साही होना चाहिए और पराक्रम करने की इच्छा रखनी चाहिए।

(२) अपनी कमाई बाप की कमाई से बढ़कर है।

(३) सारी कमाई का मुख्य उद्देश्य प्रभु की सेवा करना रखना चाहिए।

(४) लोक-सेवा ही ईश्वर की सेवा है, इसका अर्थ बालकों को बतलाना चाहिए।

(५) शिक्षक को चाहिए कि बालकों को इस देश के और दूसरे देशों के महापुरुषों के जीवन-चरितों में से पराक्रम और उत्साह के उदाहरण बतलावें।

प्राचीन समय में हमारे पूर्वज कैसा देशाटन करते थे, समुद्र में जहाज़ों द्वारा कैसे यात्रा करते थे—यह जावा इत्यादि जगहों में मिले प्रमाणों से सिद्ध करके बालकों को बतलाना चाहिए; और पंचतंत्र, मित्रभेद, कथा १६ में से सुभाषित श्लोक सुनाने चाहिए। मतलब यह है कि जिसने पृथ्वी पर पर्यटन कर देश-देशांतरों की विविध प्रकार की भाषा व वेष आदि को नहीं देखा, उसका जीना व्यर्थ है। जब तक मनुष्य प्रसन्न चित्त से देश-देशांतर नहीं जाता, तब तक उसे विद्या, धन और कलाएँ प्राप्त नहीं होतीं।

२१—निश्चय और अध्यवसाय

बुद्धदेव का एक उत्साही शिष्य था। उसने वन में जाकर एकांत में ध्यान करना आरंभ किया। थोड़े दिन में वह उकता गया और ध्यान करना छोड़ बुद्धदेव के आश्रम में आकर रहने लगा। दूसरे शिष्य उसे लौटा देखकर गुरुजी के सामने ले गए। बुद्धदेव ने पूछा—"हे शिष्यो, इसे इसकी इच्छा के विरुद्ध

यहाँ क्यों लाए हो?" शिष्यों ने जवाब दिया—"भगवन्, इसने आपका एक बड़ा भारी नियम तोड़ा है; इसने ध्यान का तप शुरू किया था, और उसे पूरा किए बिना ही वन से लौट आया है।" बुद्धदेव ने उस निर्बल-चित्त शिष्य की ओर देखकर कहा—"भाई, पूर्व जन्म में तो तेरे पुरुषार्थ से रेतीले मैदान में प्यास से मरता हुआ पाँच सौ गाड़ियों का काफ़ला बच गया था; अब तू कैसे इतना ढीला पड़ गया है?" ये शब्द सुनते ही वह शिष्य तो अपनी निर्बलता पर लज्जित हुआ, तथा औरों ने बुद्धदेव से उस काफ़ले की कथा पूछी। उन्होंने कृपा कर कह सुनाई।

पहले काशी में ब्रह्मदत्त नाम का राजा राज करता था। उसके समय में एक वणिक के घर एक बोधिसत्व-नामक लड़के ने जन्म लिया। जब वह बड़ा हुआ, तो अपने बाप का व्यापार करने लगा। एक बार ऐसा हुआ कि वह पाँच सौ गाड़ियों का एक बड़ा काफ़ला अपने व्यापार के लिये परदेश ले जा रहा था। रास्ते में एक रेतीला मैदान आया। उसकी रेती ऐसी गरम थी कि दिन में कोई उसमें होकर चल न सकता था। रात ही के समय गाड़ियाँ चलती थीं और सवेरा होते ही पड़ाव करना पड़ता था। पाल बाँधकर उसके नीचे ठंडे पहर में सब रसोई करके खा लेते थे; और संध्या से पहले ब्यालू कर, रेत ठंडी पड़ने पर, गाड़ी जुतवाकर आगे चलते थे। ऐसे मैदान में वृक्ष, जल अथवा मनुष्यों की बस्ती कहाँ से हो? इसलिये ईंधन,

पानी, भोजन वग़ैरह सब सामान साथ ही रखना पड़ता था, और रास्ता न भूल जायँ, इसलिये एक पथप्रदर्शक भी साथ रखना पड़ता था। इस प्रकार सब उचित प्रबंध करके बोधिसत्व ने मैदान में यात्रा की। मैदान साठ योजन लंबा था, जिसमें से ५६ योजन तो कट चुके थे, एक योजन बाक़ी रहा था। पानी और ईंधन निबट चुके थे। लेकिन दूसरे दिन सवेरे मैदान की सीमा के ग्राम में पहुँच जाने की सबको आशा थी, इसलिये किसी को फ़िक्र न थी। रात हुई, गाड़ियाँ जोती गईं और काफ़ला ख़ुश होकर ग्राम की ओर चला। पथप्रदर्शक आगे की गाड़ी में तकिया लगाए दिशा को ध्यान में रखने के लिये तारे की तरफ़ देख रहा था। पर बहुत दिनों के जगने से बेचारा थक गया था और ग्राम पास आ जाने के कारण बेफ़िक्र भी था। उसे अचानक नींद आ गई। आगे की गाड़ी उलटे रास्ते पर चली गई, उसके साथ दूसरी गाड़ियाँ भी उलटे रास्ते पर पड़ गईं। पौ फटते ही उस पथप्रदर्शक की आँख खुली और तारे की तरफ़ देखा तो मालूम हुआ कि बिलकुल उलटी दिशा में चल रहे हैं। चौंककर बोला—"गाड़ी रोको, गाड़ी रोको; अरे हम भूल गए!" यह सुनते ही सब लोग निराश हो गए। चारों तरफ़ रेतीला मैदान! पास ही पहले दिन के पड़ाव के कुछ चिह्न भी नज़र पड़े—गाड़ी में पानी या ईंधन ज़रा नहीं था; अब क्या हो? सब अपनी-अपनी गाड़ी छोड़कर मुँह पर हाथ धर बैठे; पर बोधिसत्व ने विचार किया कि यदि मैंने हिम्मत हारी, तो इन सबका विनाश हो जायगा। आस

नज़र दौड़ाई। एक ओर कुछ सब्ज़ी लगी हुई दीखी; इससे उसने अटकल लगाई कि इसके नीच पानी अवश्य होगा। एक कुदाली लेकर ज़मीन खुदवाने लगा। लेकिन कुछ नीचे जाकर चट्टान की तह आ गई, नौकर बाहर निकल आया। बोधिसत्व स्वयं अंदर उतरा और पत्थर में कान लगाकर सुना, तो नीचे जल जान पड़ा। बाहर आकर नौकर से कहा—"भाई, घबराओ मत, यदि काम में अड़चन आ पड़े, तो घबराना न चाहिए। यह ले लोहे का घन, और ज़ोर से पत्थर पर मार।" घन चलाते ही पत्थर फूटा और पानी भक-भक करके निकलने लगा। लोगों को अपार हर्ष हुआ। गाड़ियों में से ईंधन निकालकर सबने रसोई की। शाम को गाड़ियाँ फिर जोतीं, होशियारी से रास्ता देखते हुए चले और पास के गाँव में जा पहुँचे।

इस प्रकार कथा सुनाकर बुद्धदेव ने ध्यान-भ्रष्ट शिष्य में हिम्मत भरी और उसे ज्ञान दिया।

(१) ज़ोर से घन चलाया जाय, तो ऐसा कौन-सा पत्थर है, जो न टूटे? इसलिये दृढ़ निश्चय रखना चाहिए; जिस काम को अपने ऊपर लिया है, उसमें अध्यवसाय के साथ लगा रहना चाहिए। मुश्किल के सामने से हटना नहीं चाहिए।

(२) "नीच पुरुष विघ्न पड़ने के डर से काम शुरू ही नहीं करते, मध्यम पुरुष काम शुरू तो ज़रूर कर देते हैं, पर विघ्न पड़ने पर अटककर रह जाते हैं; उत्तम पुरुष, विघ्न के बार-बार पड़ने पर भी, आरंभ किया हुआ काम पूरा किए विना कभी नहीं छोड़ते।"

—भर्तृहरि

३२—"भगीरथ का प्रयत्न"

पुराने ज़माने में सगर नाम का एक सूर्यवंशी राजा था। वह रूप, गुण और वल में एक ही था। उसकी दो रानियों में से, शिवजी के वरदान से, एक के एक, और दूसरी के साठ हज़ार पुत्र उत्पन्न हुए।

इस एक पुत्र का नाम असमंजस था। वह वालकपन से ही नटखट और क्रूर था। नगर के निर्वल वालकों की गर्दन पकड़कर नदी के किनारे घसीट ले जाता और उसमें पटक दिया करता था। राजकुमार के इस घोर कर्म से नगर के सव मनुष्य वहुत घवराए और राजा के सामने आकर हाथ जोड़ वोले—"महाराज, जैसे आप लुटेरों और दूसरे राजों से हमारी रक्षा करते हैं, वैसे ही अपने पुत्र असमंजस के अत्याचार से हमारी रक्षा कीजिए। वह हमें वहुत तंग करते हैं, हमारे वालकों को गर्दन पकड़कर खींच ले जाते हैं और नदी में पटक देते हैं।" नगरवासियों की यह वात सुनकर राजा थोड़ी देर तक तो वहुत उदास और चुप रहा; परंतु पीछे उसने मंत्रियों को आज्ञा दी कि कुमार असमंजस को मेरे राज में से फ़ौरन् निकाल वाहर करो। यदि तुम मेरा भला चाहनेवाले हो, तो इस काम को तुरंत करो। राजा की आज्ञानुसार असमंजस देश से निकाल दिया गया।

अव उन साठ हज़ार पुत्रों का पराक्रम सुनाता हूँ। वे कुरूप

और क्रूर कर्म करनेवाले थे, और संख्या में बहुत होने से किसी को गिनते नहीं थे।

एक समय सगर राजा ने अश्वमेध यज्ञ आरंभ किया। इस यज्ञ का यह नियम है कि एक घोड़ा छोड़ा जाता है और उसके पीछे सेना भेजी जाती है; जो कोई घोड़े को बाँधे, उससे लड़-कर सेना को विजय प्राप्त करनी चाहिए। घोड़ा छोड़ा गया और उसके पीछे सगर राजा के साठ हज़ार पुत्र गए। समुद्र के किनारे वे उलटे-तिरछे, इधर-उधर फिरने लगे, और उन्हें यह खबर न रही कि घोड़ा कहाँ गया। आख़िर राजा के पास लौट आए और बोले—"पिताजी, किसी पुरुष ने अदृश्य रहकर घोड़ा चुरा लिया।" पिता ने कहा—"क्षत्रिय होकर ऐसी बात कहने में तुम्हें लज्जा नहीं आती? जाओ, घोड़े को तलाश करके लाओ।" इस पर वे घोड़े की तलाश में गए, परंतु घोड़े अथवा उसके चोर का पता नहीं मिला। वे फिर पिता के पास आकर बोले—"पिताजी, हमने नदी, नाले, पर्वत, जंगल इत्यादि सब छान डाले, पर हमें घोड़ा नहीं मिला।" पुत्रों की बात सुनकर पिता ने कहा—"तुम जाओ और घोड़े की तलाश करो। जब तक वह न मिले, मुझे अपना मुँह मत दिखलाओ।"

सगर के पुत्र फिर घोड़े की तलाश में गए। शायद घोड़ा समुद्र में छिपा हो, यह सोचकर उन्होंने समुद्र देख डाला, असंख्य जीवों को दुःख दिया, पर घोड़ा न मिला। अंत में वे समुद्र के तले कपिल मुनि के आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ देखा,

तो कपिल मुनि तपश्चर्या कर रहे हैं और पास ही एक वृक्ष के नीचे घोड़ा बँधा है । मूर्ख लड़के विना विचारे कहने लगे कि यही चोर है, इसे पकड़कर मारो । कपिल मुनि समाधि से जाग उठे और उनकी ओर नेत्र फेरे । नेत्रों की अग्नि से साठों हज़ार पुत्र क्षण-भर में भस्म हो गए ! राजा के कानों तक यह बात पहुँची, तो घबराया । एक पुत्र को देश से निकाल दिया और दूसरों की यह दशा हुई ! अब यज्ञ कैसे समाप्त हो ! असमंजस के अंशुमान नाम का एक पुत्र हुआ था ; उसे सगर राजा अपने ही पास रखता था, उसे बुलाकर कहा—"तेरे पिता को मैंने देशनिकाला दिया है और तेरे चचा सब-के-सब कपिल मुनि के क्रोध से जलकर भस्म हो गए हैं । कपिल मुनि के पास ही हमारे यज्ञ का घोड़ा है, यदि तू उस घोड़े को ले आवे, तो यज्ञ पूरा हो और मैं स्वर्ग जाऊँ ।" अंशुमान पितामह (दादा) की आज्ञा मानकर कपिल मुनि के पास गया और उनको प्रणाम कर घोड़ा माँगा । मुनि ने स्वयं तो इस घोड़े को बाँधा ही न था और न उन्हें घोड़े से कुछ प्रयोजन ही था, उन्होंने प्रसन्नता से अंशुमान को घोड़ा खोलकर ले जाने की आज्ञा दी । राजपुत्र का विनय और धर्म देखकर ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और उसे वरदान दिया कि तेरा पौत्र भगीरथ स्वर्ग से गंगा उतारेगा और उसके जल से पवित्र होकर तेरे चचा स्वर्ग जायँगे । अंशुमान घोड़ा ले आया और सगर राजा का यज्ञ पूरा हुआ ।

सगर के पीछे अंशुमान और अंशुमान के पीछे दिलीप राजा

गद्दी पर बैठा। दिलीप ने स्वर्ग से गंगानदी उतारने का बड़ा प्रयत्न किया, परंतु वह सफल न हुआ। दिलीप के पीछे उसका पुत्र भगीरथ गद्दी पर बैठा। उसने बड़ा भारी तप करके गंगाजी को प्रसन्न किया। परंतु वह पृथ्वी पर उतरें, तो उनका भार कौन सहे? इस कारण भगीरथ ने दूसरी बार तपश्चर्या कर शिवजी को प्रसन्न किया। शिवजी ने स्वर्ग से गिरती हुई गंगा को अपने माथे पर लिया, और वहाँ से वह पृथ्वी पर बहती हुई समुद्र को ओर गईं। उन्होंने समुद्र के किनारे सगर के पुत्रों को राख को अपने जल से पवित्र किया और उन्हें सद्गति मिली। गंगा 'भागीरथी' कहलाईं और सगर के पुत्रों का खोदा हुआ समुद्र 'सागर' कहलाया।

गंगा को पृथ्वी पर उतारने का प्रयत्न साधारण नहीं था। ऐसे असाधारण प्रयत्न को हम आजकल 'भगीरथ-प्रयत्न' कहते हैं। यह प्रयत्न उच्च अभिलाषा से, दृढ़ निश्चय से और लगातार श्रम से सिद्ध हुआ।

(१) सगर राजा ने अपने पुत्र असमंजस को देशनिकाले की सज़ा दी—इसमें उसका इंसाफ़ और प्रजा की प्रीति देखनी चाहिए। "पासेनिअस की माता" इत्यादि के दृष्टांत याद करो। (बालक न जानते हों, तो शिक्षक को ये कथाएँ बतलानी चाहिए।)

(२) यूथबल (जथे के बल) की बड़ी महिमा है। पर बल अच्छे काम में लगाया जाय, तभी यूथ काम का समझना चाहिए। दुष्टों का यूथ हानिकारक है। ईश्वर की कृपा से इतना ही अच्छा है कि ऐसा यूथ स्वयं ही अपने पापों से नष्ट हो जाता है। इन साठ

हज़ार पुत्रों के तूफ़ान से देवता घबराकर ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा—"हे देवतो, तुम अपने-अपने घर जाओ और सुख से बैठो। थोड़े ही समय में सगर के पुत्र अपने आप अपने पापों से मर जायँगे।"

(३) सगर के साठ हज़ार पुत्रों की मूर्खता और विचार-हीनता देखो और उनसे अंशुमान के विवेक और विनय की तुलना करो।

(४) इसी तरह यह भी देखना चाहिए कि साठ हज़ार का जथा होने पर भी सगर के पुत्रों को एक साधारण काम से हताश होकर बार-बार लौटना पड़ा। किंतु भगीरथ ने अकेले होने पर भी, किस दृढ़ निश्चय से, कैसी असाधारण कठिनाई का काम पूरा किया।

(५) महान् आत्माएँ पूर्वजों की उच्च भावनाओं को कष्ट सह-कर भी पूरा करती हैं।

(६) शिक्षक को इस गुण ('भगीरथ-प्रयत्न') के आजकल के उदाहरण बालकों को बतलाने चाहिए, जैसे स्वेज़ की नहर, ऑल्प्स की रेल इत्यादि। वर्तमान समय में कैसे-कैसे 'भगीरथ-प्रयत्न' पूर्वजों की—पूर्वजों से मतलब अपने ही पुरखों से नहीं, मनुष्य-जाति के अगले समय के लोगों से है—भावना पूरी करने के लिये हुए हैं, उनका क्रमशः वर्णन करना चाहिए; जैसे जल-मार्ग से पृथ्वी की प्रदक्षिणा; मध्य आफ्रिका, हिमालय तथा उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों की नित्य नई-नई खोजें; पूर्व (हिंद) देशों की खोज (इसके बारे में वास्कोडीगामा और कोलंबस से पहले के नाविकों के प्रयत्न तथा इन दोनो की, हिंदोस्तान और अमेरिका की खोज); वायुयान की गति को वश में करने के लिये इस समय का श्रम और उसमें दिन-पर-दिन होती हुई सफलताएँ; इत्यादि। ऊपर के विषय आगे लिखे हुए महानुभावों के जीवन-चरित के रूप में समझाने चाहिए—लेसेप्स, ड्रेक, लिविंगस्टन, नान्सेन, पियारि, शक्लटन, स्वेनहेडिन, कोलंबस

इत्यादि। और आजकल के दृष्टांत देकर ही नहीं रुक जाना चाहिए, प्राचीन समय में, व्यापार के संबंध में हमारे पूर्वजों के 'भगीरथ-प्रयत्नों' की भी याद बालकों को दिलानी चाहिए। हालाँकि उस समय यात्रा करने की आजकल-जैसी सुविधा न थी, तो भी हमारे पूर्वजों ने हिमालय, विंध्य, दंडक आदि के विकट प्रदेशों की खोज की; जंगली लोगों की बस्ती और घने जंगलों को चीरकर आर्यों की बस्तियाँ बसाईं; पहाड़ों तथा झाड़ियों के दुर्गम स्थानों पर मंदिर बनवाए; चीन, जापान, जावा, पेरू, मेक्सिको इत्यादि देशों तक, समुद्र पारकर व्यापार और धर्म का विस्तार करने में कितने कष्ट सहे—इन सब बातों के विषय में विद्यार्थियों की कल्पना को जाग्रत् करना चाहिए।

२३—ध्रुव

पुराने समय में उत्तानपाद नाम का एक राजा था। उसके सुनीति और सुरुचि नाम की दो रानियाँ थीं, किंतु राजा सुरुचि पर प्रेम रखता था। एक दिन राजा सुरुचि के पुत्र उत्तम को गोद में बैठाकर खिला रहा था, इतने में सुनीति के पुत्र ध्रुव की इच्छा राजा की गोद में बैठने की हुई और वह गोदी में चढ़ने के लिये आगे बढ़ा, परंतु राजा ने उसकी तरफ़ ध्यान नहीं दिया। पास ही सुरुचि बैठी थी। वह गर्व में आकर बोली—"भाई, राजगद्दी की अभिलाषा थी, तो मेरे पेट से जन्म लेना चाहिए था, अब तो भगवान् का नाम लो।" सौतेली मा के ये शब्द सुनकर ध्रुव के सिर से पैर तक आग लग गई और वह क्रोध से लंबी साँसें लेने लगा। राजा सब देखा किया, पर

सुरुचि से कुछ नहीं कहा। ध्रुव कुछ रोता, कुछ गुस्से में भरा हुआ, अपनी माता के पास गया। माँ ने उसे चुप किया और शांत करके बोली—"बेटे, ईश्वर की कृपा विना इस संसार में कुछ नहीं मिलता।" ये वचन सुनते ही ध्रुव भगवान् की आराधना के लिये वन में जाने को तैयार हो गया। रास्ते में नारदजी मिले। उन्होंने सब हाल सुनकर कहा—"बच्चे, अभी तू बालक है, इसलिये अपनी ज़िद छोड़ दे; जब वृद्ध हो, तब प्रभु की भक्ति कीजियो।" यह बात नारदजी ने उसके निश्चय की परीक्षा लेने को कही थी। लेकिन यह देखकर कि ध्रुव ज़रा भी नहीं डिगता है, नारदजी ने उसे ईश्वर की भक्ति करने की रीति बतलाई और ध्रुव को तपोवन की ओर रवाना कर स्वयं राजा से मिलने गए। उस समय राजा बड़े पश्चात्ताप में पड़ा था। उसके मन को ढाढ़स देकर नारदजी ने कहा—"राजन्, तुम ध्रुव के लिये वृथा शोक करते हो, वह थोड़े ही दिन में भगवान् को प्रसन्न करके यहाँ लौट आएगा।" और ऐसा ही हुआ। ध्रुव की तपश्चर्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने दर्शन दिए। ध्रुव ने राज्यासन माँग लिया और पिता के पास लौटा। पिता का मन पश्चात्ताप से अब शुद्ध हो गया था और उसने धूमधाम से ध्रुव का स्वागत किया, उसे छाती से लगाया और राजपाट दे दिया।

(१) ध्रुव की टेक और निश्चय प्रशंसा के योग्य है।
(२) हृदय की अभिलाषा सदा ऊँची रखनी चाहिए।

(३) सब अभिलाषाएँ परमात्मा ही पूरी करता है, यह याद रखना चाहिए।

(४) स्त्री के भय और आसक्ति के वशीभूत होकर राजा ने मुदित मन से आते हुए बालक का तिरस्कार किया; इस प्रकार प्रेम के वस में होकर कर्तव्य को न भूलना चाहिए।

(५) महान् आत्माएँ अपकार के बदले अपकार न करके परा-क्रम की ओर झुकती हैं।

(६) देखो, सुरुचि का गर्व और सुनीति की शांति, एक की ईर्षा और दूसरी की उदारता।

(७) माता सुनीति पुत्र को कुमार्ग पर नहीं ले जाती, बल्कि ईश्वर का मार्ग बतलाती है।

(८) ईश्वर की भक्ति केवल बुढ़ापे में ही करने की नहीं होती।

(९) ईश्वर भक्त की सब कामनाएँ पूर्ण करता है। परंतु भक्त जब भगवान् को अधिक पहचानने लगता है, तब उसे समझ पड़ता है कि ईश्वर से राज्य आदिक विषय माँगना भूल है। सच्चे भक्त भगवान् की भक्ति के सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं माँगते। इसीलिये ध्रुव अंत में पछताकर कहता है—"ओह! ईश्वर तो मुझे मोक्ष देता था, परंतु जैसे निर्धन मनुष्य चक्रवर्ती राजा से धान के छिलके माँगे, वैसे ही मुझ अभागे ने मूर्खता की जो भगवान् से राज्य माँग लिया।" सद्गुणी पुरुष इस बात की फ़िक्र नहीं करते कि सदाचार से उन्हें दुःख मिलेगा, वे तो सद्गुण की ख़ातिर ही सद्गुणी बनने की इच्छा करते हैं; और सदाचार से चलने पर दुःख झेलना पड़े, तो भी उन्हें कुछ दुःख नहीं होता।

(१०) अंत में सुरुचि, सुनीति और ध्रुव, इन नामों के ऊपर विचार करना चाहिए। जो मन चाहे वह करना (सुरुचि) और नीति से चलना (सुनीति), इन दोनों में पहली वृत्ति अधिक प्रबल

है; मनुष्य को मनमानी करना अच्छा लगता है, पर नीति पर चलना नहीं सुहाता। ध्रुव—दृढ़ता का गुण—नीति के साथ जुड़ा हुआ है और इस गुण से ईश्वर प्रसन्न होता है। (देखो हरक्यूलिस की कथा)

३४—उत्तम जीवन

[१]

गरुड़ पक्षियों का राजा है। जहाँ बिजली और गर्जन हो, ऐसे ऊँचे आकाश में विहार करना उसे पसंद है। बेचारी मधु-मक्खी, छोटी-सी जान, वह झाड़ी और पेड़ में भटक-भटककर रस इकट्ठा करती और छत्ता लगाती है। इन दोनो के जीवन भिन्न-भिन्न हैं। तो भी एक बार जब गरुड़ पानी पीने पृथ्वी पर उतरा, तो उस समय दोनो का मेल हुआ। गरुड़ बोला—"मधु-मक्खी, तेरा-जैसा जीवन किसको अच्छा लगेगा? बसंत ऋतु-भर तू पेड़-पेड़ और फूल-फूल पर मारी-मारी फिरती है और बूँद-बूँद रस जमा-कर छत्ता लगाती है, सो भी दूसरों के लिये! मेरा जीवन देख, जहाँ बिजली और गर्जन हो ऐसे आकाश में तो मैं रहता हूँ; कोई पक्षी मुझसे ऊँचा या तेज़ उड़ नहीं सकता; और चाहूँ जिसके हाथ में से ख़ुराक छीन लूँ।"

मधु-मक्खी ने जवाब दिया—"ठीक है महाराज, यह ऊँचा पद आप ही को मुबारक हो। मुझे इसका लोभ नहीं कि ऐसी ऊँची उड़ूँ जो सब जगत् मुझे देखे, या दूसरों की चीज़ छीन-

कर खाऊँ; मुझे तो मेहनत करना अच्छा लगता है। फूल-काँटों में भटककर मेहनत करके मैं मधु इकट्ठा करूँ और वह दूसरों के काम आए, यही मेरी अभिलाषा है।"

सच्चा बड़प्पन बल में या कीर्ति में, अथवा किसी से ज़ोर-ज़ुल्म से छीन लेने में नहीं है; साधारण रीति के जीवन में रहकर परोपकार करना—और ऐसा करने में जो श्रम पड़े उसे ख़ुशी से हँसते-हँसते उठाना, यही सच्चा बड़प्पन है।

[२]

एक नदी क्रीड़ा करती, घाटियों, चट्टानों और कंदराओं में से रास्ता करती, फैलती-फालती, समुद्र की ओर जाती थी। उसके किनारे बहुत-से नगर बसे हुए थे। उनके निवासी नदी का उत्तम जल पीते थे और नावों में तरह-तरह का माल भर-कर समुद्र के किनारे बंदरगाहों में ले जाते और वहाँ से लाते थे। बीच-बीच में उस नदी में से नीचे के प्रदेशों के लिये ऊँचे प्रदेशों में बहुत-सी नहरें काटी गई थीं, जिनसे अनगिनती खेतों को पानी मिलता और चारो तरफ़ का प्रदेश बारहो महीने हरा-भरा और फल-फूल से लहराता रहता था। इसके सिवा एक-दो जगह जहाँ नदी के जल-प्रपात थे, वहाँ उस पानी से बिजली पैदा कर, इस बिजली द्वारा बहुत-से कारख़ाने चलाए जाते थे।

नदी-किनारे एक तलैया थी। वह विना हिले-चले एक दशा में पड़ी रहती थी, और पास के वृक्षों से जो पत्ते झड़ते थे, वे उसमें पड़े-पड़े सड़ा करते थे; इसलिये उस तलैया से बदबू भी

आती थी। उसके ऊपर मच्छड़ उड़ा करते थे, जिनकी वजह से सर्दी के दिनों में आस-पास के गाँवों में बुख़ार फैलता था।

एक बार तलैया को बोलने की शक्ति हुई और वह नदी से कहने लगी—"ऊँह, तुम्हारा जीवन भी क्या है? रात-दिन काम-ही-काम करते रहना, घड़ी-भर भी चैन से न बैठना। लोग तुम्हें हैरान किया ही करते हैं और अंत को समुद्र में तो तुम्हारा कोई नाम-निशान भी नहीं रहता!" नदी ने जवाब दिया—"बहन, मुझे तो तुझ पर दया आती है। देख, मैं निरंतर हिलती, चलती, काम करती और आगे बढ़ती रहती हूँ, इसलिये मेरा शरीर कैसा स्वच्छ और ताज़ा रहता है! मेरा अंतर कैसा निर्मल और मेरा मुख कैसा प्रसन्न रहता है! और अपनी हालत देख—तेरे ऊपर कितने मच्छड़ भिनभिनाते हैं और तेरे तले में कितनी कीच जमा है! मेरे ऊपर हज़ारों नावें फिरती हैं, पर मुझे वे ज़रा भी भारी नहीं लगतीं; लाखों आदमी मेरे जल का उपयोग करते हैं, पर इससे भी वह नहीं घटता। अंत में मैं समुद्र में मिल जाती हूँ। वहाँ मेरा नाम-निशान नहीं रहता, पर इसका मुझे कुछ रंज नहीं। मैं तो समुद्र में से ही आती हूँ और उसी में फिर मिल जाती हूँ। तेरी उत्पत्ति भी समुद्र से है, पर उसकी तुझे कुछ ख़बर नहीं है, और स्वार्थी होकर तू अपना जीवन सबसे अलग बिताती है। तू अभी तक यही समझती है कि बिना काम किए पड़े रहने में सुख है, पर थोड़े ही समय में तेरे जीवन का अंत आ जायगा।"

गर्मी का मौसम आया और तलैया सूख गई।

गुरु—नदी और तलैया दोनो के जीवन में तुम्हें किसका जीवन पसंद है ?

सब बालक—नदी का, नदी का—

गुरु—मैं जानता था कि तुम सब 'नदी का' कहोगे; पर नदी का जीवन क्यों ज्यादा अच्छा है, इस बात का जवाब मैं तुमसे निकालना चाहता हूँ।

मानिकलाल—क्योंकि वह मेहनत का जीवन है।

चुन्नीलाल—क्योंकि वह अग्रगामी (आगे बढ़ता हुआ) जीवन है।

वसंतलाल—क्योंकि वह परोपकारी जीवन है।

गुरु—ठीक है, जो उद्योगी, आगे को बढ़ता हुआ और परोपकारी जीवन है, उसी को तंदुरुस्त, आनंदी और निर्मल जीवन समझना चाहिए।

(१) जो स्वयं मेहनत करता है वही अपनी आबरू बचा सकता है।

(२) जिस समय पांडव विराट-नगरी में छिपकर रहते थे, उस समय उनकी विद्या-कला उनके बड़े काम आई। इसीलिये मोहम्मद साहब ने अपनी ही मेहनत की कमाई से पेट भरने की आज्ञा की थी, जिसके कारण कितने ही मुसलमान बादशाह अपने हाथों से टोपियाँ बनाकर बेचते थे। आराम का मज़ा भी उसी को मिलता है, जो अपने आप मेहनत करता है। आराम या खुशी का आनंद जितना रात को आता है, उतना सवेरे नहीं आता। जिस समय किसान हल रखकर घर आता है और रोटी खाकर स्त्री और बालकों के साथ

बातचीत करने बैठता है, उस समय के आनंद का वर्णन कोई नहीं कर सकता।

३५—वचनामृत

[१]

देखो जाति लुहार की, मिहनत करती ख़ूब ;
कठिन काम से भी कभी, आती जिसे न ऊब।
जेठ मास ऋतु ग्रीष्म में, जब बरसे अंगार ;
घोर दुपहरी में अहो, करता काम लुहार।
है भट्टी का सामना, चले स्वेद की धार ;
लेकिन अपने काम में, रहता डटा लुहार।

मधु-मक्खी को देखिए, कली-कली रस बीन ;
छत्ता रखकर एक दृढ़, संचय करे प्रवीन।
वन-वन मधु की खोज में, भटके हो हैरान ;
बना परिश्रम के लिये, अपना जीवन जान।
जहाँ देखिए दीखता, उद्यम का ही राज ;
बिना उठाए हाथ के, हो नाहिं भोजन-काज।
उद्यम समझो प्राण निज, उद्यम जय का मूल ;
बिन उद्यम जीना वृथा, मरना करो क़बूल।
विद्या कारीगरी में, करें सदा उद्योग ;
जीवन में फूलें-फलें, जिसमें हँसें न लोग।

आलस से होते बहुत, दुखदायक अपराध ;
श्रम से तन-मन को सदा, मिलता हर्ष अबाध।

बालकपन में काम कर, करें देह मजबूत ;
आदत उद्यम की रहे, रहें न कोरे ऊत ।
तरह-तरह के ग्रंथ पढ़, करें अनेकों काम ;
पीछे कभी न दुख मिले, मिले नाम, धन, धाम ।
अगले दिन के काम का, कर लें आज विचार ;
जिससे अगले दिन न हम, बैठें हो बेकार ।
उठते ही हम रोज़ निज, उद्यम में लग जायँ ;
करें पुण्य के काम नित, प्रभु को खूब रिझायँ ।

हे प्रभु, ऐसी कर कृपा, लगे काम में चित्त ;
उद्यम-धंधे में लगें, खूब कमावें वित्त ।
मन नित उत्साहित रहे, आलस आय न पास ;
नीयत भी साबित रहे, सदा रहें तव दास ।

[२]

जब क़दम बढ़ाया तब क्या पीछे हटना ;
जब काम आ पड़े सबसे आगे डटना ।
जो वचन निकाला उससे कभी न फिरना ;
क्यों जान-बूझकर भी गड्ढे में गिरना ।
संकट पड़ने पर ज़रा नहीं घबराना ;
कस कमर, धैर्य धर, संकट से भिड़ जाना ।
आकाश गिरे या हो पृथ्वी का फटना ;
जब क़दम बढ़ाया तब क्या पीछे हटना ॥१॥

मैं जीत जंग को आगे बढ़ जाऊँगा ;
या खड़ा यहीं पर सुख से कट जाऊँगा ।

जो काम लिया है पूरा उसे करूँगा ;
बन कायर अपजस-भार न शीश धरूँगा।
मैदान छोड़ने से सब नाम धरेंगे ;
कायर बनने से रिपु भी हँसी करेंगे।
कैसे होगा लज्जित जीवन का कटना ;
जब क़दम बढ़ाया तब क्या पीछे हटना ॥२॥

कायर बनने से फिर पछताना होगा ;
सर्वदा हाथ मल-मल रह जाना होगा।
यह मौक़ा खोकर फिर क्या हाथ लगेगा ?
धन, सुहृद और यश सब कुछ दूर भगेगा।
बस मन को कर मजबूत उमंग भरूँगा ;
हूँ वीर, कि मैं यम से भी नहीं डरूँगा।
पुरुषार्थ प्रेम की सदा रहेगी रटना ;
जब क़दम बढ़ाया तब क्या पीछे हटना ॥३॥

[३]

सब चलो जीतने जंग, बिगुल बजता है ;
सुन जिसे शूर रण का सुसाज सजता है।
साहस से नाम सदा वीरों ने पाए ;
साहस से हनुमत खबर सिया की लाए।
साहसी राम ने सागर पर पुल बाँधा ;
था काम असंभव, संभव करके साधा।
साहस से कोलंबस ने नाम कमाया ;
जिसने कि नई दुनिया का पता लगाया।
साहसी हो गए हैं प्रताप-से राना ;
संकट को संकट नहीं जिन्होंने माना।

वह वीर नहीं जिसमें साहस का टोटा ;
समझा जाता है कायर सबसे छोटा।
धन, यश सब कुछ साहसी लोग पाते हैं;
डरपोक आलसी बैठे रह जाते हैं।
चलते साहस से काम सभी दुनिया में ;
है जिसमें साहस उसकी क़द्र जहाँ में।
वह बात सुधारे या जीवन तजता है ;
सब चलो जीतने जंग, बिगुल बजता है।

[४]

लड़ाई धीर-वीर का काम, न ले जो उतावली का नाम;
लड़ेगा क्या कायर नादान, भूलता है जो झट औसान।
उन्हीं को समझो सच्चे वीर, नहीं जो होते कभी अधीर;
कष्ट चाहे जितने आ जायँ, आपदाएँ भी खूब डरायँ।
किंतु वे ज़रा नहीं घबरायँ, हौंसले क्षण-क्षण बढ़ते जायँ;
जानते नहीं कि 'डर' क्या है, नहीं पीछे पग पड़ता है।
साहसी हैं वे कहलाते, काम कुछ हैं कर दिखलाते ;
बनेंगे हम भी सच्चे वीर, कहेगा जग हमको रणधीर।

(१) उद्यम, धैर्य, साहस, वीरता, उत्तम विचार, उत्साह, पराक्रम—इन सद्‌गुणों के भावों को ऊपर की कविता के सहारे मनोरंजक ढंग से विद्यार्थियों में भरना चाहिए।

(२) शिक्षक को चाहिए कि बालकपन से ही विद्यार्थियों से शरीर की मेहनत और चुस्ती के ऐसे काम करावे, जैसे मदरसे के बग़ीचे में पानी देना इत्यादि। मदरसे के खेल-कूद में भी बुद्धिमानी के साथ साहस और पराक्रम की रुचि पैदा करने की आदत डालनी चाहिए।

अवतरण

बालको, मैंने तुम्हें आत्मबल के सद्गुण—स्वाश्रय, उद्यम, निश्चय, अध्यवसाय, दृढ़ता इत्यादि—मामूली तौर से बतलाए। इन सद्गुणों का उपयोग तुम्हारे जीवन में क़दम-क़दम पर हो सकता है। अपने विद्याभ्यास और खेल-कूद में तुम देखोगे कि वही बालक हमेशा सफल होते हैं, जिनमें ऊपर कहे हुए गुण होते हैं। और इसी प्रकार जब तुम दुनिया में आओगे, तो इन्हीं गुणों से तुम्हें सफलता होगी। बड़े होकर इन गुणों का एक अत्यंत आवश्यक उपयोग करने का प्रसंग तुम्हारे सामने आवेगा। वह धन कमाने में। तुम्हें धन की तृष्णा हो ऐसा मैं नहीं चाहता, क्योंकि धन की तृष्णा अनेक आवश्यक सद्गुणों को हानि पहुँचाती है; परंतु उसके साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि तुमको धन कमाने की इच्छा ही न हो। कारण यह है कि हमारा देश दूसरे देशों की अपेक्षा बड़ा ग़रीब है, और इस ग़रीबी को मिटाने का यत्न करना हरएक भारतवासी का कर्तव्य है। हमारे देश की ग़रीबी फ़ौरन् नहीं मिट सकती, पर ऊपर कहे हुए सद्गुणों को यदि हम अपने-अपने जीवनों में ग्रथित कर लें, तो निश्चय है कि कुछ ही दिनों में हम भी अपने देश को दूसरे उन्नत देशों के समान समृद्धिमान् बना सकेंगे। इसलिये मैं चाहता हूँ कि अपने स्वार्थ की ख़ातिर नहीं,

बल्कि देश की खातिर तुम लोग ऊपर के गुणों को प्राप्त कर धन कमाओ। परंतु यह मेरी इच्छा कदापि नहीं है कि उसे अनीति के मार्ग से कमाओ, अथवा उसका दुरुपयोग करो।

३६—उद्योग

एक समय पैग़ंबर हजरत मोहम्मद साहब बैठे हुए थे कि इतने में उनके पास एक मजबूत, हट्टा-कट्टा भिखारी भीख माँगता आया। पैग़ंबर साहब ने पूछा—"क्यों भाई, क्या तेरे पास कुछ माल-मिल्कियत नहीं?" भिखारी ने जवाब दिया—"नहीं साहब, सिर्फ़ एक चटाई और एक लोटा है।" पैग़ंबर साहब बोले—"अच्छा तो इन दोनो चीज़ों को मेरे पास तो ले आ।" भिखारी ने दोनो चीज़ें लाकर पैग़ंबर साहब के पास रख दीं। हज़रत मोहम्मद ने दोनो चीज़ों को नीलाम कर दिया और पैसे उस भिखारी को देकर कहा—"इनमें से कुछ का नाज लाकर खा ले और बाक़ी के पैसों से लुहार के यहाँ जाकर एक कुल्हाड़ी का फल तैयार करा ला।" भिखारी पेट-भर अन्न खाकर लुहार के यहाँ गया और कुल्हाड़ी का एक फल तैयार करा लाया। पैग़ंबर साहब के पास एक लकड़ी पड़ी हुई थी; उसे उन्होंने फ़ौरन् फल के छेद में ठोक दिया। कुल्हाड़ी तैयार कर उस भिखारी के हाथ में दी और कहा—"जा, इससे लकड़ी चीरकर अपनी गुज़र कर।"

(१) भीख माँगना बुरा है ; जहाँ तक अपना बस चले स्वयं परिश्रम करके पैसा कमाना चाहिए।

(२) जो पैसा पसीने से पैदा किया जाय वही सच्चा है, बिना उद्योग किए भीख माँगकर जो पैसा कमाया जाय, उसे चोरी का पैसा समझना चाहिए।

(३) भीख माँगना लज्जा की बात है; कुल्हाड़ी से लकड़ी चीरने में कुछ लज्जा नहीं। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार जो मेहनत की जाय, वह पवित्र और आदर के योग्य है।

(४) शिक्षक को विद्यार्थियों को यह बतलाना चाहिए कि भारत-वर्ष में धर्म के नाम पर भीख माँगकर खानेवाले अज्ञानी और आलसी बाबाओं, फ़क़ीरों और ब्राह्मणों की कितनी बड़ी संख्या है और उनके निकम्मे रहने से देश की कितनी बड़ी हानि होती है। साथ ही, यह भी बतलाना चाहिए कि सब धर्मों का उपदेश यही है कि जो दान करना हो वह सुपात्रों को, अथवा दुनिया की भलाई के लिये करना चाहिए।

३७—नाभाग की कथा

मनु महाराज के पुत्र का नाम नभग था और नभग के पुत्र का नाम नाभाग। नाभाग गुरु के घर पढ़ने गया और वहाँ बहुत दिनों तक रहा। उसके भाइयों ने, यह समझकर कि वह सदा ब्रह्मचारी रहेगा, पिता की जायदाद के हिस्से करते समय इसका हिस्सा अलग नहीं किया और सारी जायदाद आपस में ही बाँट ली। नाभाग, जो सबसे छोटा था, गुरु के घर से विद्या-भ्यास करके लौटा, तो अपना हिस्सा माँगा। आया हुआ धन

कोई लौटाता है—ऐसे दुष्ट विचार से प्रेरित हो भाइयों ने जवाब दिया—"तेरे लिये तो हमने यह बुड्ढे रख छोड़े हैं।" इस पर नाभाग ने पिता के पास जाकर कहा—"पिताजी, मेरे बड़े भाई कहते हैं कि मेरे हिस्से में तुम आए हो, क्या यह सच है?" पिता ने कहा—"बेटा, वे तुझे ठगना चाहते हैं, तो भी, यदि उन्होंने मुझे तेरे हिस्से में दिया है, तो मैं तेरी गुज़र का उपाय बतलाता हूँ।" किसी जगह यज्ञ हो रहा था। नाभाग के पिता ने उसको उस यज्ञ में जाकर और वहाँ सबको अपनी विद्वत्ता से लाभ पहुँचाकर कमाई करने की सलाह दी। नाभाग उस यज्ञ में गया और वहाँ एकत्रित ब्राह्मणों को अच्छे-अच्छे ईश्वरीय सूक्त पढ़ाए, जिससे ख़ुश होकर ब्राह्मणों ने इसे यज्ञ में दक्षिणा लेने की अनुमति दे दी। यज्ञ के अंत में यह धन लेने जाता था कि रुद्रदेव वहाँ आए और कहने लगे कि इस यज्ञभूमि पर पड़ा हुआ धन मेरा है। नाभाग बोला—"यह धन ऋषियों ने मुझे दिया है।" रुद्र ने कहा—"जा, इस मामले का फ़ैसला अपने पिता से करा, जो वह कहेंगे वही किया जायगा।" नाभाग ने पिता के पास जाकर सब हाल कहा और पूछा—"यज्ञभूमि पर पड़ा हुआ धन किसका?" उसके पिता ने उत्तर दिया—"रुद्र का।" नाभाग ने आकर यही रुद्र से कह दिया। पिता के न्याय तथा पुत्र की सचाई से ख़ुश होकर रुद्र बोले—"हे नाभाग, तेरे पिता ने धर्मवचन कहे और तू भी सत्य बोलता है, इसलिये जा, इस धन को ले जा और मैं तुझे परमात्मा का ज्ञान देता हूँ वह

सुन।" पीछे, ज्ञान का उपदेश कर, सत्य के ऊपर प्रीति रखने-वाले रुद्रदेव अंतर्धान हो गए।

(१) अपने आप कमाना ही श्रेष्ठ है।

(२) अपने पुरुषार्थ से कमाना चाहिए और अधर्म का धन कुछ न लेना चाहिए।

(३) परमेश्वर सत्य और न्याय से ही राज़ी रहता है।

(४) जो सत्य और न्याय से चलता है, उसे ईश्वर धन देता है।

(५) सत्य और न्याय की नींव पर ही ज्ञान की इमारत बनती है, अर्थात् सच्चा और न्यायी मनुष्य ही प्रभु के ज्ञान का अधिकारी होता है।

(६) भाई का भाई को धोखा देना बड़ा भारी पाप है। पर कुटुंब में कलह न करके, जो स्वयं अपनी कमाई का रास्ता निकाल लेता है, उस उदार वीर की ईश्वर सहायता करता है।

३८—पुरुषार्थ

[१]

एक जागीरदार ने एक बुद्धिमान् अमीर के यहाँ कन्या की मँगनी की। अमीर ने जवाब दिया—"तुम्हारे यहाँ जायदाद भले ही हो, पर मैंने तो प्रतिज्ञा की है कि जिसको कम-से-कम एक हुनर भी न आता होगा, उसे अपनी कन्या न दूँगा।" जागीरदार के यह बात चुभ गई। उसने फ़ौरन् टोकरी और चटाई इत्यादि बनाने का काम सीखा और फिर उस अमीर के

यहाँ जाकर मँगनी की । अमीर ने अपनी कन्या दे दी। थोड़े दिनों बाद एक परदेशी राजा ने जागीरदार का देश लूट लिया और उसकी ज़मीन ज़ब्त कर ली। जागीरदार निर्धन हो गया, पर उसके पास हुनर था; उससे वह अपना और अपनी स्त्री का निर्वाह इज़्ज़त के साथ करने लगा। अपनी मेहनत की रोटियाँ उसे पहले के पकवानों से अधिक मीठी लगीं।

इसलिये मुसलमानों के धर्म में राजा को भी मेहनत करके कमाने की आज्ञा है। औरंगज़ेब और अहमदशाह-सरीखे बादशाह टोपी सीकर बेचते थे; और औरंगज़ेब तो अपने कफ़न तक को इसी कमाई से ख़रीदने को कह गया था।

[२]

एक किसान ने मरते समय अपने लड़कों को बुलाकर कहा—"पुत्रो, अब मैं ईश्वर के चरणों में जाता हूँ। मेरी जायदाद और जो कुछ भी मेरा है, मेरे खेत में है—यह मैं तुमको देता हूँ। जी तोड़ मेहनत करके उसे निकाल लेना और अच्छे कामों में ख़र्च करना।" इतना कहकर किसान मर गया। किसान का धन अवश्य खेत में ही है—परंतु बाप के शब्दों का भीतरी मतलब लड़के बिलकुल नहीं समझे और यह सोचकर कि खेत में किसी जगह धन गड़ा होगा, दूसरे ही दिन से खेत को खोदना शुरू कर दिया। तमाम खेत खोद डाला, परंतु कहीं गड़ा हुआ धन न मिला। लेकिन ज़मीन ऐसी अच्छी तरह खुद गई कि उस वर्ष खेत में भरपूर फ़सल पैदा हुई। यह देखकर लड़कों

की समझ में बाप के शब्दों का गहरा अर्थ आया कि किसान का धन खेत ही में है, और उसको वहीं से जी तोड़ मेहनत करके बाहर निकालना चाहिए।

[३]

एक चीनी के यहाँ आटा पीसने की चक्की थी। उसमें सारा गाँव आटा पिसवाता था; और उसी से उसको अच्छी आमदनी थी। वह चीनी लोभी और द्वेषी था। एक बार उसने सुना कि उसके पड़ोसी को बराबर तीन दिन स्वप्न में धन दिखाई दिया और खोदने पर मिल गया, तो-उसके जी में भी इसी तरह धन पाने के विचार आने लगे। मुझे कब ऐसा स्वप्न दीखे और कहीं से धन का टोकना मिले, इसी विचार में वह दिन-रात डूबा रहने लगा। उसका जी अपने काम से उचट गया। उसका आटे की कल का काम बिगड़ने लगा और ग्राहक घटने लगे, पर उसकी आँखे न खुलीं। रात-दिन धन की धुन में रहने से उसे एक रात ऐसा स्वप्न दीखा कि आटे की चक्की के नीचे जमीन में एक घड़ा गड़ा है। वह इसी विचार में डूब रहा था, इसलिये तीन रात बराबर उसे वही स्वप्न दीखा। स्वप्न को सच्चा मानकर उसने अपनी चक्की के नीचे खोदना शुरू किया। खोदते-खोदते एक शिला मिली। उसे देख वह बड़ा खुश हुआ और सोचने लगा कि इसके नीचे जरूर घड़ा होगा। परंतु मजदूरों से खुदवाना ठीक न होगा, क्योंकि उनकी नीयत बिगड़ेगी और कभी मेरे यहाँ आकर चुरा ले जायँगे, यह सोचकर उसने

निश्चय किया कि केवल अपनी स्त्री से सहायता लेकर घड़े को निकालूँगा। यह विचारकर वह स्त्री को बुलाने के लिये घर आया और यह ख़ुशख़बरी सुनाई। दोनो चक्की पर गए और मिलकर शिला उखाड़ी, पर नीचे कुछ भी न मिला। निराश हो दोनो घर आए। जैसे-तैसे रात काटी। दूसरे दिन प्रातःकाल आकर चक्की को देखा, तो सारा मकान गिरा पड़ा है। उस शिला के हटाने से दीवार कमज़ोर पड़ गई और सवेरा होने से पहले ही मकान गिर गया। यह भी ईश्वर की कृपा हुई कि तुरंत ही नहीं गिरा और वह दब जाने से बच गया।

(१) अपना पुरुषार्थ ही धन का घड़ा है।

(२) सीधी तरह मेहनत करने से जो मिले उससे संतोष न कर, जो मनुष्य यह लोभ करते हैं कि बिना मेहनत एकदम धन कमा लें, वे अपनी निज की पूँजी भी खो बैठते हैं।

(३) खेती करना, माल बनाना, व्यापार करना, विद्या बढ़ाना, नमकहलाली, न्याय और नम्रता से अधिकार तथा नौकरी का कर्तव्य पालन करना आदि धन कमाने के साधन हैं।

(४) उद्योग सच्चा होना चाहिए। चोर चोरी करता है, उसमें भी उसे कुछ कम मेहनत और अक़्ल नहीं लगानी पड़ती; लुटेरा लूटता है, अपने काम में सर्दी-गर्मी कुछ नहीं गिनता और जान को जोखिम में डालता है; तो भी हम चोर और लुटेरे का उद्योग पसंद नहीं करते, क्योंकि ये सच्चे उद्योग नहीं।

(५) सच्चे उद्योगों में भी जो उपयोगी उद्योग हो वह अधिक अच्छा समझा जाता है। पालतू गिलहरी पिंजड़े में सुबह से शाम तक भले ही कला खाया करे, पर उस ने किसी का क्या लाभ? मकड़ी

जो जाला पूरती है, उसमें कुछ कम मेहनत नहीं पड़ती, परंतु तो भी हम मधु-मक्खी के उद्योग की ही प्रशंसा करते हैं, क्योंकि उससे दूसरों को लाभ होता है।

(६) बुद्धि और पराक्रम (इन सद्गुणों का वर्णन ऊपर हो चुका है) के साथ सच्ची उपयोगिता के मिलाने की कितनी आवश्यकता है, यह बात इस जगह पर शिक्षक को विद्यार्थियों को समझानी चाहिए; और इसी प्रकार और जगह भी इस बात का स्पष्ट विवेचन करना चाहिए कि सद्गुणों में अनेक तत्त्वों का मिश्रण है, और अनेक सद्गुणों के मिलने से एक सद्गुणी जीवन बनता है।

३६—जादू की अँगूठी

एक गाँव में एक किसान रहता था। उसके पास बहुत ही थोड़ी ज़मीन थी। इसलिये उसके हाथ तंग रहते थे। एक दिन प्रातःकाल वह अपने खेत में काम करने गया, तो उसने प्यास से तड़पती हुई एक वृद्ध तेजस्वी स्त्री भूमि पर बेचैन पड़ी देखी। उसका हृदय दया से पिघल गया। तुरंत अपने खेत के कुएँ से पानी खींचकर उसने उस बुढ़िया के मुँह में डाला। थोड़ी देर में बुढ़िया ने आँखें खोलीं और उठ खड़ी हुई। फिर वह उस किसान का, जिसने उसकी जान बचाई थी, बड़ा धन्यवाद करने लगी और उससे पूछा—"भाई, यदि तेरे हृदय में कोई दुःख हो, तो मुझसे कह, उसे दूर करने की कोशिश करूँ और तेरे उपकार का बदला चुकाऊँ।" किसान ने जवाब दिया—"माता, मैं बड़ा निर्धन हूँ, इसलिये मुझे ऐसा मार्ग बतला कि जिससे मेरी दरि-

द्रता मिटे।" किसान की यह बात सुनते ही बुढ़िया ने कमर से निकालकर एक सोने की अँगूठी उसके हाथ में दी और बोली—"यह अँगूठी जो मैंने तुझे दी है, जादू की है। बहुत दिन हुए मुझे एक संन्यासी बाबा ने दी थी। यदि तू इसे अपने हाथ की ऊँगली में पहनकर फिरावेगा, तो जो इच्छा उस समय तेरे मन में होगी, तुरंत पूरी हो जायगी। इतनी बात याद रखियो कि इस अँगूठी का उपयोग केवल एक बार हो सकता है, इसलिये ख़ूब पक्का निश्चय किए बिना इसका उपयोग न करियो।" इतना कह बुढ़िया चलती बनी और किसान कुछ आश्चर्य और कुछ हर्ष मानता अपने घर की ओर चला। रास्ते में उसका एक मित्र मिला, जो जाति का सुनार था। उससे उसने उस अँगूठी की क़ीमत पूछी। सुनार ने उसकी क़ीमत बहुत कम बतलाई। इस पर किसान ख़ूब हँसा और बोला—"इस अँगूठी की क़ीमत तो दस करोड़ रुपए है, क्योंकि यह जादू की अँगूठी है।" सुनार ने कहा—"यार, इसका कुछ और हाल बताओ, यह तो अजीब चीज़ है।" किसान खुले दिल का, सच्चा मनुष्य था। उसने सब हाल, जो खेत में हुआ था, बतला दिया। सुनार कपटी, स्वार्थी और लोभी था, इसलिये यह बात सुनकर उसकी नीयत बिगड़ी। उसने घर जाकर वैसी ही एक दूसरी अँगूठी तैयार कर डाली और एक दिन किसान से वह अँगूठी अपनी स्त्री को दिखलाने के बहाने मँगाकर बदल ली। अर्थात् अपने हाथ की गढ़ी

अँगूठी किसान के यहाँ भेज दो और जादू की अँगूठी अपने यहाँ रख ली। किसान को इस कपट का जरा वहम तक न हुआ। दूसरे दिन सुनार एकदम विना हाथ-पाँव हिलाए बहुत मालदार बनने के लालच से अपनी दूकान के किवाड़ अंदर से बंद कर उस अँगूठी को उँगली पर फेरकर बोला—"मेरी यह इच्छा है कि यह दूकान फ़ौरन् सोने की एक करोड़ मोहरों से भर जाय।" सुनार अपने मुख से ये शब्द कही रहा था कि इतने में उसके चारो तरफ़ सारी दूकान में सुवर्ण-मोहरों की वर्षा होने लगी और वे मोहरें सुनार के सिर और पीठ में तड़ा-तड़ लगने लगीं। आख़िर वह सुनार सोने की मोहरों के ढेर के नीचे दबकर मर गया।

उधर, उस भोले किसान ने अँगूठी की कथा अपनी स्त्री को सुनाई, तो वह उससे वार-वार उस अँगूठी को एकदम फिराकर लखपती बन जाने को कहने लगी। पर किसान उसे बार-बार यह कहकर समझा देता कि अभी तो आगे चलकर हमारा बुढ़ापा आने को है, जब हमारे शरीर और मन की शक्तियाँ मंद पड़ जायँगी; इसलिये उन्हीं दिनों में हमें अँगूठी का उपयोग करने की असली ज़रूरत पड़ेगी। अभी तो हम जवान हैं, इसलिये इस वीच में तो, विना अँगूठी की मदद लिए, केवल मेहनत ही से काम चलाना अच्छा है, क्योंकि तू जानती ही है कि इस अँगूठी का उपयोग केवल एक ही वार हो सकता है। स्त्री को अपने स्वामी की वात पसंद आई और उस पर

राज़ी हो गई। बूढ़े होने तक वे उद्योग किया किए और अंत में एक दिन मर गए। अपने पीछे उन्होंने पहले से लाखगुनी जाय-दाद छोड़ी, क्योंकि वे नियम-पूर्वक उद्योग करते थे और साथ-ही-साथ किफ़ायत करना भी खूब जानते थे।

(१) जो शठता से और विना उद्यम धन जमा करता है, वह धन के ढेर में दबकर मर जाता है।

(२) "संकट के समय ईश्वर की प्रार्थना करूँगा, तो वह मेरी मदद करेगा।" ऐसी शुद्ध बुद्धि की श्रद्धा ही सच्ची जादू की अँगूठी है, और यों श्रद्धा रखकर जो अपने पुरुपार्थ से, स्वयं मेहनत कर, पैसा कमाता है, वह सुखी होता है।

४०—सेठ और मोची

एक गेहूँ के व्यापारी की तीन मंज़िल की हवेली के सामने एक ग़रीब मोची की दूकान थी। मोची गाता जाय और जूते सीता जाय। उसका मन आनंद में मग्न रहता था, इसलिये वह शरीर से भी खूब संडमुसंडा था। सेठ ने गेहूँ का सट्टा किया था और उसे यही चिंता सवार रहती थी कि गेहूँ का क्या भाव आता है। रात के तीन बजे तक वह खाट में लोटा करता, पर नींद न आती। दिन में भी कुर्सी पर बैठा-बैठा इसी विचार में डूबा रहता। इससे उसका शरीर सूखकर काँटा हो गया। ऐसी चिंता के समय सिर्फ़ उस मोची का गाना कभी-कभी उसे आनंद दे देता था। इससे ख़ुश होकर सेठ ने एक दिन मोची को बुलाया।

सेठ—अमृत, वर्ष-भर में कितना कमा लेता है ?

मोची—सेठजी, वर्ष में हिसाब करने लायक़ तो मैं क्या कमाऊँगा ? शाम होने तक आठ आने हो जाते हैं ।

सेठ—मुझे तेरे भजन बहुत अच्छे लगते हैं । डॉक्टर रुपए खाए जाते थे और कुछ फ़ायदा नहीं होता था, पर इन आठ दिनों से तेरे भजन सुनता हूँ, तब से मेरा मन सुखी रहता है और रात को नींद भी आने लगी है । इसलिये यह ले पचास रुपए । डॉक्टर को देता हूँ, तो तुझे ही क्यों न दूँ ?

यह कह सेठ ने मोची के हाथ में पचास रुपए के नोट रख दिए । मोची ने घर जाकर एक संदूक़ में सँभालकर रख दिए । पर उसकी संदूक़ टूटी थी, इसलिये उसे यह फ़िक्र रहने लगी कि कहीं चूहे न काट डालें, या चोर न ले जायँ । जूते सीते-सीते उसे नोटों की याद आती और दिन में दो-चार वार संदूक़ के पास जाकर देखता कि वे सही-सलामत रक्खे हैं या नहीं । रात को तकिए के नीचे रखकर सोता । चूहे यों ही खटपट करते, तो भी इस भय से कि शायद चोर आए हैं, चौंक पड़ता । इसका परिणाम यह हुआ कि वह बेचारा ठीक-ठीक जूते सीने से भी हाथ धो बैठा, भजन गाना तो बिलकुल ही भूल गया, और उसका शरीर भी चिंता से घुलने लगा । सोचने पर अपने दुःख का कारण उसकी समझ में आ गया । वह फ़ौरन् सेठजी के नोट लौटा आया ।

सेठ ने जब से इस मोची के भजन सुनने शुरू किए थे, तब

से उसको दशा बदलने लगी थी। उसने सट्टा करना बंद करके मेहनत से रुपया कमाना शुरू कर दिया था और लोभ छोड़-कर जो कुछ कमाता था, उसमें से अपने निर्वाह के लायक़ निकालकर बाक़ी खुले हाथों लोक-कल्याण के कामों में ख़र्च कर देता था। ऐसा करने से उसके मुख को सफ़ेदी जाती रही और उस पर एक नया तेज आ गया।

अंत में जब उसका पड़ोसो मोची बीमार पड़ा, काम न कर सकने के कारण उसकी कमाई बंद हो गई और रोटियों के लाले पड़ने लगे, तब सेठ ने उसके घर नाज भरवा दिया और उसका इलाज कराने में खूब मदद दी। मोची अच्छा हो गया। पीछे सेठ ने उसे फ़ौज के जूते तैयार करने का ठेका दिलवा दिया। इस काम से मोची को केवल अच्छा लाभ ही नहीं हुआ, वरन् वह बड़ा होशियार कारीगर समझा जाने लगा। दिन-पर-दिन उसका काम बढ़ता गया, यहाँ तक कि वह मजदूर से कारख़ाने का मालिक हुआ। एक समय वह था कि उसे बीमारी में दूसरे की दया पर रहना पड़ा था; अब वह समय आया कि जब लड़ाई में मरे हुए सिपाहियों की अनाथ विधवाओं और बालकों के गुज़ारे के लिये फ़ौज में चंदा हुआ, तो उस मोची ने भी ख़ुशी से यथाशक्ति दान दिया।

(१) उद्योगी के लिये मेहनत से पैदा की हुई सूखी रोटियाँ सट्टे के पकवानों से ज़्यादा अच्छी हैं; एक में अमृत है, दूसरे में विष है।

(२) धन के जागरण से ग़रीबी की नींद ज़्यादा अच्छी है।

(३) मनुष्य को इतना धन जमा करने की बड़ी ज़रूरत है कि बीमारी या ऐसे ही उचित ख़र्च के किसी दूसरे मौक़े पर किसी का मुँह न ताकना पड़े।

(४) साफ़ नीयत और ईमानदारी के साथ मेहनत करोगे, तो ईश्वर तुम्हें इतना धन अवश्य देगा, जो मुसीबत के समय काम आवे।

(५) इतनी कमाई होने पर उसमें से काफ़ी जमा करने और परोपकार में ख़र्च करने में चूकना नहीं चाहिए।

(६) ईश्वर अच्छे दिन दिखावे तो पहली दशा को न भूलना चाहिए। तुमने जिस प्रकार दूसरों का अहसान लिया हो वैसे ही दूसरों के साथ करना भी चाहिए।

(७) इन सब बातों में प्रभु के भजन की महिमा देखो। मोची के भजनों ने ही मोची और सेठ दोनो को तारा। मोची ने सेठ का उपकार किया और सेठ ने मोची का। इस प्रकार दोनो ने अपना जीवन सार्थक किया—यह सब भजन का फल है।

(८) तीन सूत्ररत्न—

(क) जितना कमा सको उतना कमाओ।

(ख) जितना बचा सको उतना बचाओ।

(ग) जितना दे सको उतना दो।

(या तीनो काम एक ही साथ करो।)

४१—सेई (स्याही) और साँप

एक सेई ने साँप से कहा कि मुझे अपनी बाँबी में जगह दे दो। साँप ने बिना विचारे उससे कह दिया कि आओ। वह

उसकी बाँबी में गई और उसके काँटे के समान नोकदार बाज़ू साँप के शरीर में चुभे। इससे उसे बड़ी तकलीफ़ हुई, पर वह करता तो क्या करता, मेहमान को निकाल तो सकता ही न था। यही सोचकर उसे रहने दिया। जब बहुत दिन हो जाने पर भी स्याही वहाँ से न गई, तब साँप ने उससे कहा—"सेईजी, अब तुम यहाँ से चलती बनो, हमसे तुम्हारा उपद्रव नहीं सहा जाता।" उसने जवाब दिया—"मैं कैसे जाऊँ? मुझे तो यह जगह बहुत पसंद है; यदि तुम्हें पसंद न हो, तो तुम्हीं क्यों नहीं चले जाते?"

(१) यदि कोई हमें कुछ चीज़ दे, तो क्या हमें उसे हज़म कर लेना चाहिए? हमको वह अच्छी लगती हो तो लगा करे, इससे क्या? दूसरे की चीज़ किस काम की?

(२) बिना हक़ के किसी की चीज़ लेना एक प्रकार की चोरी है; उसमें कृतघ्नता भरी है; कैसी बुरी बात है!

(३) कितने ही विद्यार्थियों को दूसरों की पुस्तक या नोट इत्यादि लेकर हज़म करने की आदत होती है; कितने ही दूसरों की जगह बैठ जाते हैं, इत्यादि—बालकों के जीवन में से छोटे-छोटे उदाहरण लेकर शिक्षक को उन्हें यह बात स्पष्ट करके बतलानी चाहिए, और ऐसी आदतों को छोटी उमर से ही न पड़ने देना चाहिए।

४२—दो फेरीवाले

एक बार अपने पूर्वजन्म में बुद्ध भगवान् फेरी लगाकर पीतल के खिलौने बेचने का काम करते थे। वे और उनके साथ

का एक और फेरीवाला दोनो एक बड़े शहर में गए और शहर की गलियों में अलग-अलग फिरने लगे।

यहाँ एक पुराने नगरसेठ का कुटुंब रहता था। यह कुटुंब भाग्य के फेर से बड़ा ग़रीब हो गया था और इसके बहुत-से लोग मर चुके थे। केवल एक बुढ़िया और उसके लड़के की एक छोटी लड़को घर में बच रहे थे। घर में कोई कमानेवाला तो था ही नहीं, इसलिये वे दोनो घर की बची-खुची संपत्ति को बेचकर अपना निर्वाह करती थीं। घर बड़ा था और नौकर था नहीं, इस कारण कुल घर में बुहारी तक नहीं लगती थी। इधर-उधर कूड़े और टूटे-फूटे सामान के ढेर पड़े थे; उसमें हीरे-जड़ी एक सोने की थाली भी पड़ी थो, पर उस पर इस क़दर धूल जम गई थी कि वह जरा भी पहचान में न आती थी।

बुद्धदेव का साथी फेरीवाला फिरता हुआ नगरसेठ की गली में आया और "खिलौने लो, खिलौने!" यह आवाज़ लगाने लगा। आवाज़ सुनकर नगरसेठ की लड़की बाहर बरामदे में आई और पीतल का हाथी देखकर बुढ़िया से कहने लगी—"दादी, मुझे यह हाथी ले दो।" बुढ़िया के पास एक पैसा भी न था। उसे लड़की की बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ। परंतु बालक का मन कैसे दुखावे? इसलिये उसने उस फेरीवाले से कहा—"भाई, मैं तुझे एक-आध टूटा-फूटा बर्तन देती हूँ, उसके बदले में अपनी इस बहन को एक अच्छा-सा हाथी दे दो।" यह कह बुढ़िया वह थाली ले आई और फेरीवाले के हाथ में दी।

फेरीवाले को एक जगह पर हीरा-सा चमकता दिखाई पड़ा। पास ही से एक कील उठाकर उसे ज़रा घिसा, तो अंदर सोना चमकता हुआ नज़र आया। लोभी फेरीवाले ने सोचा कि ठगने का अच्छा मौक़ा है। पर उसका इरादा कुछ ढोंग करने का हुआ। इसलिये यह कहकर कि यह तो लोहे का पतरा है, इसमें दो पैसे का भी माल नहीं, उसने ग़ुस्से से थाली फेक दी। उसे यह आशा हुई कि अभी चला जाऊँगा, तो लड़की का हठ देखकर बुढ़िया मुझे फिर बुलावेगी और एक की जगह ऐसी ही दो थालियाँ देगी। थाली फेककर वह चला गया।

इतने में बुद्ध भगवान्, जो पास ही की गली में खिलौने बेच रहे थे, फिरते-फिरते नगरसेठ की गली में आए। इनके पास भी खिलौने देखकर लड़की दौड़ी और डलिया में से एक हाथी ले बुढ़िया के पास जाकर बोली—"दादी, मुझे यह हाथी ले दो।" बुढ़िया की आँखों में आँसू आ गए, बोली—"कहाँ से लूँ और कैसे लूँ?"

लड़की—उसी थाली से।

बुढ़िया—उस थाली को कौन पूछता है? देखा नहीं, उस फेरीवाले ने कैसे फेक दी थी?

लड़की—नहीं, यह खिलौनेवाला ले लेगा। यह वैसा नहीं है। मैंने इसकी डलिया छू ली, तो भी इसने कुछ नहीं कहा और मुझे अच्छा-सा छाँटकर यह हाथी दे दिया। अभी तो इसे कुछ भी नहीं दिया गया।

बुढ़िया बाहर आई और बुद्ध भगवान् का प्रसन्न और दया से भरा चेहरा देखकर उसे लड़की का कहना ठीक मालूम हुआ। वही थाली देकर बुढ़िया ने कहा—"भाई, तेरे हाथी की क़ीमत देने लायक़ मेरे पास पैसे तो हैं नहीं; पर यदि यह थाली दूँ, तो काम चल जायगा कि नहीं? थाली पुरानी और टूटी है, पर इस लड़की को अपनी बहन समझकर इसे चला ले, तो ईश्वर तेरा भला करेगा।" बुद्धदेव ने थाली को हाथ में लेकर देखा, तो चकित हो गए। थाली सोने की थी और उसमें हीरे जड़े हुए थे। बोले—"माजी, मेरे पास के सब खिलौने और मेरी कमर में बँधी हुई सब मोहरें भी मिलकर तुम्हारी थाली की क़ीमत के बराबर नहीं हैं। थाली सोने की है और बीच में रत्नों का फूल जड़ा है।" यह सुनते ही बुढ़िया पहले तो सन्न रह गई, फिर बोली—"महाराज, तुम कोई महात्मा जान पड़ते हो। ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे हाथ लगने से यह थाली सोने की हो गई है। अभी एक फेरीवाला आया था, उसने इसे यह कहकर फेंक दिया था कि इसमें दो पैसे का भी माल नहीं है, इसलिये तुम इस थाली को रक्खो और हाथी देते जाओ।"

बुद्धदेव ने लड़की के आगे हाथी ही, क्या सब खिलौनों का ढेर लगा दिया, और उनके पास जितनी सोने की मोहरें थीं, वे सब बुढ़िया को दे दीं। सिर्फ़ खाली डलिया ले ली और नदी पार जाने के लिये नाववाले को देने के लिये जितने

पैसों की जरूरत थी, बुढ़िया से माँग लिए। इतना करके बुद्धदेव चले गए।

थोड़ी देर बाद वह लोभी फेरीवाला नगरसेठ के घर वापस आया और बोला कि वह थाली दो, तो हाथी दूँ। बुढ़िया ने जवाब दिया—"भाई, तू लोभी और ठग मालूम होता है। एक दूसरा फेरीवाला आया था, उसने अपने आप यह कहा कि थाली सोने की है, और हज़ार सोने की मोहरें देकर थाली ले गया।" उस ठग को बुद्धदेव पर बड़ा क्रोध आया, ग़ुस्से से सिर पीटता नदी की ओर दौड़ा। वहाँ उसने बुद्धदेव को नाव में बैठे हुए नदी के बीच में जाते देखा और चिल्लाकर कहने लगा—"ओ नाववाले, नाव ठहरा।" पर नाव तो नदी-पार पहुँच गई और वह धूर्त ग़ुस्से में छाती पीटता और बाल नोचता इसी पार रह गया।

(१) सदा सचाई से धन कमाना चाहिए।

(२) खोटा माल अच्छा बतलाकर देना, अथवा झूठी तराज़ू, झूठे बाँट, झूठी नाप, झूठा हिसाब आदि बेईमानी के साधन काम में लाना महापाप है; ऐसा पाप करके कोई इस संसार में सुखी नहीं होता और परलोक में ईश्वर के सम्मुख उसे इन खोटे कामों का जवाब देना पड़ता है।

(३) ऊपर कही गई बेईमानी तो बेशक बड़ी बुरी है ही, पर माल का एक भाव न करना, पहले ग़लत क़ीमत बतलाकर फिर घटाना-बढ़ाना भी व्यापार करने की बुरी रीति है। ऐसी किच्-किच् से व्यर्थ का झंझट होता है और वाजिबी सौदा शायद भाग्य से ही कभी हो पाता है।

(४) जो लोग व्यापार में सचाई से काम करते हैं, उन्हीं का माल ख़ूब खपता है और वही व्यापार में सफल होते हैं। "धर्म में जय और पाप में क्षय" यह अटल नियम है।

(५) हमारे देश को सच्चे व्यापारियों की बड़ी अवश्यकता है। ग्रामों में ईमानदार दूकानदार होने पर ही ग्रामों की दशा सुधरेगी, और शहरों के दूकानदार तथा कारख़ानेवाले जब ईमानदारी से काम करेंगे, तभी देश-परदेश में उनकी धाक जमेगी, आबरू बनेगी और व्यापार ख़ूब चलेगा।

(६) शिक्षक को चाहिए कि हाल के ज़माने के, ईमानदारी से धन कमानेवाले, रोथशील्ड आदि महापुरुषों का हाल लड़कों को बतलावे।

(७) सज्जन की कोमलता और दुर्जन की कर्कशता के विषय में भी शिक्षकों को दो-चार बातें कहनी चाहिए।

४३—लोभी की कथा

एक मनुष्य बड़ा लोभी था। उसे एक नारियल की ज़रूरत हुई। बनिए की दूकान पर जाकर दाम पूछा। बनिए ने तीन पैसे माँगे। लोभी ने पूछा—"कहीं दो पैसे में भी मिलता है?" बनिए ने कहा—"शहर में दो पैसे ही में मिल जायगा।" वह लोभी शहर की ओर चला। शहर वहाँ से दस गाँव आगे था। शहर में पहुँचकर एक दूकान पर नारियल की क़ीमत पूछी। दूकानदार ने दो पैसे माँगे। लोभी ने पूछा—"एक पैसे में कहाँ मिलेगा?" दूकानदार ने बतलाया—"दस गाँव आगे एक

बंदरगाह है वहाँ एक ही पैसे में एक नारियल मिलता है।" वह लोभी बंदर पर गया और वहाँ भाव पूछने पर उसे मालूम हुआ कि एक पैसे में एक नारियल मिलता है। लोभी नें पूछा—"कहीं एक पाई में भी मिलेगा ?" जवाब मिला—"जंगल में।" फिर वह जंगल में गया और वहाँ पूछा, तो मालूम हुआ कि एक पाई में ही मिलता है। फिर भी लोभी ने पूछा—"मुफ़्त में कहाँ मिलता है ?" इस पर जंगल के रखवाले ने कहा—"जा, उस नारियल के पेड़ पर चढ़कर तोड़ ले, तो मुफ़्त में ही मिल जायगा।" यह सुनकर लोभी पेड़ पर चढ़ा और एक नारियल को पकड़कर तोड़ने लगा। इतने ही में उसके पैर फिसल गए और वह लटकता हुआ रह गया।

इतने में एक ऊँटवाला उस रास्ते से निकला। लोभी ने उससे कहा—"ओ भाई, मेरे पैर इस पेड़ पर टिका दे, तो मैं बचूँ और नीचे उतर आऊँ।" ऊँटवाले को दया आई। उसने ऊँट पर खड़े होकर ज्यों ही लोभी के दोनो पैर पकड़कर पेड़ पर अटकाने चाहे कि फ़ौरन् ऊँट नीचे से खिसक गया और वह भी लटकता रह गया। ऊँटवाले के मन में अब यह भय हुआ कि कहीं लोभी नारियल न छोड़ दे, नहीं तो दोनो मरेंगे। ऐसा सोचकर वह बोला—"भाई, तू नारियल को न छोड़ेगा, तो मैं तुझे पाँच सौ रुपए दूँगा।" लोभी ने कहा—"ठीक है, मैं न छोड़ूँगा।" इतने ही में एक घोड़ेवाला आया; उससे उस ऊँटवाले ने बड़ी नम्रता से कहा—"मेरे पैर इस पेड़ से अटका

दे, तो मैं सहीसलामत नीचे उतरूँ।" घोड़ेवाले ने घोड़े पर खड़े होकर ऊँटवाले के पैर पकड़े ही थे कि घोड़ा नीचे से हट गया और वह भी ऊँटवाले के पैरों से लटकता रह गया। उसने सोचा कि कहीं लोभी ने नारियल छोड़ दिया, तो सबसे पहले मैं मरूँगा, इसलिये लोभी से कहा—"तू अगर नारियल नहीं छोड़ेगा, तो मैं तुझे एक हज़ार रुपया दूँगा।" लोभी ने कहा—"ठीक।" परंतु यह सोचकर कि इकट्ठी डेढ़ हज़ार रुपए की रक़म मिलेगी, लोभी को बड़ी ख़ुशी हुई और विचार-ही-विचार में यह कहकर कि डेढ़ हज़ार रुपए तो "इतने सारे होते हैं" उसने अपने दोनो हाथ फैला दिए, जिससे तीनो मनुष्य ज़मीन पर पछाड़ खाकर गिरे और लोभी वहीं ठंडा हो गया। अत्यंत लोभ करने का फल बुरा होता है।

नहीं लोभ का अंत जहाँ है ;
कुछ भी शोभा नहीं वहाँ है।
तृष्णा का ही राज्य अगर हो ;
तो धन से संतोष कहाँ है ?

(१) इसके साथ शिक्षक को कंजूसपने की और भी एक-आध मिसाल देनी चाहिए।

(२) लोभ दो प्रकार का होता है; एक तो धन-संचय करने का, और दूसरा धर्म-अधर्म का विचार छोड़कर धन कमाने का। दूसरे प्रकार के लोभ में असत्य, चोरी, हत्या इत्यादि काम शामिल हैं। पहले प्रकार का लोभ, जिसका मनोरंजक चित्र इस पाठ में खींचा गया है, कंजूसपने से मिलता-जुलता है। अधिकांश में यह अपने ही लिये

हानिकारक है। और ख़ास अपना रुपया भी जन-समाज की मदद के विना जमा नहीं हो सकता, इसीलिये इसको जन-समाज के प्रति पाप करना कहा जा सकता है।

इस प्रकार के लोभ में अदूरदर्शिता इत्यादिक अज्ञान के स्वरूप विद्यमान रहते हैं—(उदाहरण—"सोने के अंडे देनेवाली मुर्गी", "कुत्ता और परछाहीं" इत्यादि कथाएँ)

४४—चूहा और छिपकली

एक चूहा भूख के मारे सूख गया था। उसने बड़ी मेहनत से एक नाज की कोठी में छेद किया और उसके अंदर गया। वहाँ कितने ही दिन तक ख़ूब खा-पीकर वह मोटा हो गया। एक दिन उसने कोठी में से बाहर निकलने की बड़ी कोशिश की, परंतु मोटा होने से उसका शरीर उस छेद से बाहर न आ सका। यह देख उससे एक छिपकली ने, जो उसके पास थी, कहा—"भाई, जो तू अपने को इस बंदीख़ाने (क़ैद) से छुड़ाना चाहता हो, तो उसका उपाय एक ही है—जैसा सूखा तू पहले था, वैसा ही हो जा ; मेरी राय में ऐसा करने से तू बाहर निकल सकेगा।"

(१) जीने के लिये कमाने की ज़रूरत है।

(२) परंतु बहुत-सा धन कमाकर भर रखना एक क़ैदख़ाने में पड़ने के समान है।

(३) जीने और क़ैदख़ाने से छूटने का एक ही मार्ग है, और वह यह कि दुबला होना—कमाकर ख़र्च करना।

४५—अपव्यय (फ़ुज़ूलख़र्ची)

अकबर ने बीरबल से पूछा—"लाख बड़े की बीस?" बीरबल ने जवाब दिया—"बीस"। अकबर ने कहा—"बीरबल तू बकता है।" बीरबल ने हाथ जोड़कर कहा—"जहाँपनाह, ठीक कहता हूँ।" इस पर अकबर ने इस विचित्र जवाब का कारण पूछा। बीरबल ने कहा—"जो मनुष्य लाख कमाकर सवा लाख ख़र्च कर देता है, उसकी अपेक्षा वह अधिक अमीर है, जो बीस कमाता है और उन्नीस ख़र्च करता है और इसीलिये लाख से बीस अधिक हैं।" बीरबल का कहना ठीक है। जो मनुष्य अपनी आमदनी से ज्यादा ख़र्च रखता है, उसके समान निर्धन कोई नहीं।

आमदनी से ज्यादा ख़र्च करने की आदत कई तरह से पड़ती है। कितने ही आदमी ऐसे बेख़बर होते हैं कि उन्हें यही नहीं मालूम रहता कि उन्हें क्या लेना और क्या देना है। इस कारण वह आय के अनुसार ख़र्च रखने के बदले इच्छा के अनुसार ख़र्च रखते हैं। अंत में आय कम होने से क़र्ज़दार हो जाते हैं। इसीलिये एक महान् पुरुष ने अपने शिष्यों को अपना हिसाब स्वयं लिखने की उत्तम शिक्षा दी थी। आमदनी का ख़याल रखकर हरएक महीने के ख़र्च का अंदाज़ा करना चाहिए और निश्चय कर लेना चाहिए कि इस अंदाज़े से ख़र्च बढ़ने न पावे। ख़र्च का अंदाज़ा करने से पहले यह

विचार कर लेना चाहिए कि इस वर्ष हमारे यहाँ विवाह आदि क्या-क्या उत्सव होने को हैं। ऐसा भी कुछ इंतज़ाम रखना चाहिए कि जिससे अनायास बीमारी वग़ैरह आफ़त पड़ने पर घबड़ाना न पड़े।

बहुत-से मनुष्यों में तो ऊपर कही हुई बेफ़िक्री से भी कहीं बुरे दोष होते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि उनका ख़र्च उनकी आमदनी से कितना ज़्यादा है, तो भी उसमें कमी नहीं करते। ऊँचे विचार और उदार मन में ही सच्ची भलमनसी है, और यही सच्ची दौलत है। इस बात को वे भूल जाते हैं और बाहरी ठाठ-बाट में बड़प्पन समझते हैं। वे अपने बराबर के दूसरे लोगों की भाँति ख़र्च किए जाते हैं। जैसे एक बालक दूसरे बालक के हाथ में खिलौना देखकर हठ करके वैसा ही खिलौना लेता है। वैसे ही वे दूसरे का बँगला देखकर अपना घर गिराकर बँगला बनवाते हैं; अपनी शक्ति है कि नहीं, इसका कुछ विचार नहीं करते। दिन-पर-दिन क़र्ज़ ख़ूब बढ़ता जाता है; लेनेवाले से मुँह छिपाते फिरते हैं; लेनदार तक़ाज़ा करता है, तो बड़े नाराज़ होते हैं; अंत में घर पर या अदालत में जवाब देना ही पड़ता है; स्वतंत्र सेठ से बिगड़कर दीन ग़ुलाम बनते हैं और मरते समय अपने कुटुंब को भिखमंगा बना जाते हैं।

इस प्रकार कितने ही मनुष्य ऐश-आराम में रुपया उड़ाते हैं; कितने ही झूठे घमंड और जाति-पाँति की

बहुत-सा धन लगाकर तंग होते हैं। बड़ी-बड़ी वारातें निकालने में और ले जाने में वे बड़प्पन समझते हैं। "उसका तो बड़ा कुलीन घर है, वह भी खर्च न करेगा, तो कौन करेगा ?" ऐसे बढ़ावे दे-देकर जातिवाले खर्च कराते हैं ; एक दिन वाह-वाह हो जाती है और पीछे जैसा कि किसी कवि ने कहा है कि लेनदार का—

है दूसरे दिन से ही शुरू होता तक़ाज़ा ;
ऐसे उधार का कहाँ चलता है फिर पता।
जब हो गई नालिश तो अदालत ने क्या किया ?
कर ज़ब्त सभी कुछ, उन्हें घर में से निकाला।

यह कुछ कम बुरी हालत है ? जिसे गुंजायश हो, उसे उत्सवों पर यथोचित खर्च करने की मनाही नहीं, पर कितने ही वेचारे ऐसे हैं, जो जन्म-भर बड़ी मुश्किलों से तो गुज़र करते हैं और जाति के एक ही दिन के निमंत्रण में उनका इतने दिनों का इकट्ठा किया धन उड़ जाता है। यह अत्यंत दुःख की बात है। इसलिये फिर भी एक वार कहा जाता है कि होशियारी से, सादेपन से, और लोगों की झूठी प्रशंसा में न आकर, किफ़ायतशारी से रहना चाहिए। जिस देश की मितव्ययता (किफ़ायतशारी) की मेगास्थनीज़ ने ख़ास प्रशंसा की थी, उसी देश के वालक तुम हो, इस वात को कभी न भूलो।

(१) क़र्ज़ (ऋण) के बुरे नतीजे—

(क) व्याज देते-देते धन विलकुल निवट जाता है।

(ख) संसार में प्रतिष्ठा घटती है; लेनदार को एक-दो बार

टालना पड़ता है, जिससे सब यह कहना शुरू कर देते हैं कि अमुक मनुष्य तो दिवालिया है।

(ग) झूठ बोलना—वचन का पालन नहीं होता, झूठे बहाने करने ही पड़ते हैं।

(घ) अप्रामाणिकता—क़र्ज़े से तंग आकर देनदार एक से क़र्ज़ लेकर दूसरे को देता है, और अंत में जब जवाब देने का समय आता है, तब बुरी-भली चालाकियाँ करता है, इत्यादि।

(ङ) कुटुंब दुःख में फँसता है।

(२) इससे बचने के उपाय—

"आमदनी से कम ख़र्च रखना"—इस महान् उपदेश का पालन करने के लिये नीचे लिखे उपाय करने चाहिए—

(क) आमदनी और ख़र्च की अटकल लगाना—ख़र्च कुछ ज़्यादा और आमदनी कुछ कम जोड़नी चाहिए; और पीछे इसी प्रमाण के अनुसार आमदनी से ख़र्च कम रखना चाहिए।

(ख) हिसाब रखना, और अपने आप रखना—ग़रीब आदमी को भी रखना चाहिए, क्योंकि उसे अमीर से भी ज़्यादा होशियार रहने की ज़रूरत है।

(ग) नक़द देकर ख़रीद करना—उधार न लाना। व्यापार में उधार माल लेना पड़ता है। पर ऐसा तभी करना चाहिए, जब इस बात का निश्चय हो कि मिती पर रुपए का प्रबंध पूरी तौर से और अवश्य हो जायगा।

(घ) बेफ़ायदे कभी ख़र्च न करना, अगर किसी चीज़ की अपने को ज़रूरत न हो, तो उसे सस्ती—पानी के मोलों—मिलने पर भी न लेना चाहिए। विवाह

वग़ैरह के ख़र्च कम करने चाहिए, और जिन ख़र्चों का बदला मिले—जैसे बालकों की शिक्षा—उनको करना और उत्साह के साथ करना चाहिए।

(९) "नहीं" करना सीखना—जिसका देना है उससे नहीं बल्कि अपने ही मन से, अपनी जीभ से, अपनी आँख से। जिस वस्तु पर मन चले, उसी को लेकर रहने की आदत अच्छी नहीं।

परंतु इन सब बातों के साथ-ही-साथ दान करना न भूलना चाहिए। ग़रीब को अपने वित्त के अनुसार दान करना, परंतु सन्मार्ग में।

४६—धन का उपयोग

बुद्ध भगवान् अपने एक पूर्वजन्म में तोते का रूप धरकर दुनिया में आए थे। जब उनका पिता वृद्ध हुआ, तो उसने बुद्धदेव (तोते के रूप में) को बुलाकर कहा—"भाई, मैंने आज तक अपने झुंड का यथाशक्ति पालन-पोषण किया, अब मैं बुड्ढा हुआ और मुझमें शक्ति नहीं रही, इसलिये तू इनका मुखिया बन और इनका हित कर।" बुद्धदेव ने कहा—"जो आज्ञा, आप आराम कीजिए। अब मैं इन सब भाइयों की सेवा करूँगा।" यह कहकर बुद्धदेव ने उस तोतों के समूह की सरदारी स्वीकार की और उन्हें हमेशा हिमालय की तलहटी में, जहाँ ख़ूब धान के खेत पक रहे थे, दाना खिलाने ले जाने लगे। तोतों का यह झुंड इतना मनोहर था कि खेतों के रखवाले

तोतों को देखते ही रहते, परंतु कभी किसी का मन उन्हें उड़ाने का न होता। तोते दाना खाकर उड़ जाते, पर उनके सरदार बुद्धदेव दाना चुगने के बाद थोड़ी-सी मंजरी चोंच में भरकर घर ले जाते। एक बार खेत के रखवालों ने इनका सुंदर रूप देखकर इन्हें पकड़ने का विचार किया और इनके रोज़ के बैठने के स्थान पर जाल बिछाया। जाल में बुद्धदेव के पैर फँस गए, पर उन्होंने विचार किया कि जो मैं अभी से चिल्लाता हूँ, तो दूसरे तोते भूखे ही उड़ जायँगे, इसलिये उन सबको खा-पीकर उड़ जाने दूँ, पीछे जो मेरा होना होगा, सो होता रहेगा। तोतों का समूह दाना चुगकर उड़ गया और उनके सरदार बुद्धदेव जाल में पकड़ गए। रखवाले बुद्धदेव को पकड़कर खेत के मालिक के पास ले गए। वह उनका रूप देखकर चकित हो गया और उसके मन में यह बात आई कि यह तोता कोई अलौकिक जीव है। उसने बुद्धदेव से कहा—"शुकराज, तुम स्वयं भले ही चुगो, पर चुगने के पीछे चोंच में भी मंजरी ले जाते हो, यह क्या ?" बुद्धदेव ने आदमी की बोली में जवाब दिया—"महाराज, जो दाना मैं चोंच में ले जाता हूँ, उसमें से कुछ से अपना उधार चुकाता हूँ, और कुछ दूसरों को उधार देता हूँ, और बाक़ी कोठार में भरता हूँ।" यह उत्तर सुनकर खेतवाले को बड़ा कुतूहल हुआ, और उसने बुद्धदेव से प्रार्थना की—"इस बात को जरा खोलकर कहो।" बुद्धदेव ने कहा—"मेरे वृद्ध माता-पिता हैं, जो अब चल-फिर नहीं सकते, उन्हें मैं

अन्न देता हूँ, यों मैं उनका ऋण चुकाता हूँ। मेरे बच्चे हैं जो अभी उड़ नहीं सकते, उन्हें भी मैं अन्न देता हूँ, यह उनको उधार देता हूँ; क्योंकि जब मैं बुड्ढा हो जाऊँगा, तो वे मुझे इसी तरह खिलावेंगे। दूसरे तोतों में जो अपंग, निर्बल तथा वृद्ध होने के कारण बाहर चल-फिर नहीं सकते, और जिनका कोई भरण-पोषण करनेवाला नहीं है, उन्हें भी अन्नदान करता हूँ ; यही मेरा कोठार है।" यह उत्तर सुनकर खेतवाला बड़ा प्रसन्न हुआ, और यह कहकर कि "तुम और तुम्हारे साथी शौक़ से मेरे खेत में नित्य दाना चुगा करें", उसने बुद्धदेव को छोड़ दिया। उसे बुद्धदेव की वाणी से इस बात का उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ कि मनुष्य को अपनी कमाई का कैसे उपयोग करना चाहिए।

(१) मनुष्य को अपनी कमाई में से वृद्ध माता-पिता का पालन करना चाहिए। स्वप्न में भी उनको भाररूप न समझना चाहिए।

(२) माता-पिता को चाहिए कि बालकों को पालें और परिश्रम सहकर और काफ़ी ख़र्च करके उन्हें शिक्षा दें।

(३) जो कमाया जाय वह केवल अपने या अपने कुनवे के पालने के लिये ही नहीं। यह भली भाँति समझना चाहिए कि हमारी कमाई पर जन-समाज का भी हक़ है। अपनी कमाई का उचित भाग यथाशक्ति अनाथों और अपंगों को दान देना और दूसरों की भलाई में ख़र्च करना चाहिए।

४७—धनमल्लजी की गुफा

नए वर्ष की परिवा के दिन अप्सराओं की रानी के यहाँ

बड़ा भारी उत्सव होता था। उसमें अनेक वीर पुरुष जमा होते थे, और वहाँ से वे उस रानी के आज्ञानुसार दूसरों का दुःख दूर करने के लिये जगत् में निकल पड़ते थे। रानी के सम्मुख एक वृद्ध मनुष्य ने प्रार्थना की—"रानीजी, मेरे देश को एक राक्षस बहुत हैरान करता है। उससे हमारा पीछा छुड़ाओ, तो मैं हमेशा आपका एहसान मानूँगा।" रानी ने अपने पास बैठे हुए धर्मसिंह नाम के वीर की ओर देखा। उसने बीड़ा उठाया, और विनय के साथ कहा—"रानीजी, मैं इस सम्मान के योग्य तो नहीं, पर आपकी आज्ञा सिर-माथे। ईश्वर की कृपा हुई, तो काम पूरा करूँगा।" यह कह धर्मसिंह घोड़े पर सवार हुआ, और उस वृद्ध के बतलाए हुए मार्ग पर घोड़ा छोड़ दिया। रास्ते में उसे विकट जंगल मिले, और वहाँ चोर और लुटेरों के साथ लड़ने के बहुत-से मौक़े आए, परंतु उन सबमें ईश्वर की कृपा से उसे विजय मिली। होते-होते वह घनी झाड़ियोंवाली एक घाटी में आ निकला। झाड़ी इतनी घनी थी कि उसमें सूर्य की किरणें भी नहीं पहुँचती थीं। वहाँ उसने अँधेरे में बैठा हुआ एक कुरूप मनुष्य देखा, जिसकी पीठ में बोझ उठाते-उठाते कुब्ब निकल आया था, और आँखें जागने के कारण सूज गई थीं। वह तेलियों-जैसे कपड़े पहने हुए था। उसके आस-पास चारो ओर सोने के ढेर पड़े थे, जिनके ऊपर वह बार-बार बैठता और एक-

एक ढेर की चीजें बार-बार गिनता था। वह धर्मसिंह को देखकर चौंका, और इस डर से कि यह मेरा धन ले जायगा, उसने सब ढेरों को हाथों से उठा-उठाकर पास की गुफा में पटकना शुरू किया। धर्मसिंह ने हँसकर उससे कहा—"भाई' क्यों घबराता है ? मैं तेरा धन लेने नहीं आया हूँ। मुझे तो तुझसे इतना ही कहना है कि इस द्रव्य के उचित उपयोग करने या दान करने के बदले तू इसे इस निर्जन स्थान में छिपाकर क्यों रखता है ?" उस मनुष्य ने, जिसका नाम सेठ धनमल्लजी था, बड़े घमंड से कहा—"अभी तू मुझे पहचानता नहीं, इसीलिये बिना सोचे-समझे ऐसी बात कहता है। मेरा नाम धनमल्लजी है, मैं धन का देवता हूँ, और इस पृथ्वी पर मेरे समान सामर्थ्यवान् दूसरा कोई नहीं है। मेरी कृपा से सुख, यश, मान, राज इत्यादि सब पदार्थ सहज में मिल जाते हैं, जिनके लिये कितने ही अभागे मनुष्य जी तोड़कर मिहनत करते हैं, परंतु नहीं पाते। जिसे सब कोई बिलकुल ही गया-बीता समझते हों, उसके सामने ही सारी दुनिया से माथा झुकवा दूँ—मेरा बल ऐसा है।" धर्मसिंह ने जवाब दिया—"यह राज इत्यादि तुझे मुबारक हों ! मुझे तो जो चाहिए वह, ईश्वर की कृपा से, तेरी सेवा किए बिना ही मिल जाता है।" धनमल्लजी को यह जवाब बुरा लगा, परंतु जिसे उसकी परवा न हो, उसका वह करता ही क्या ? पीछे वह धर्मसिंह

को एक गुफा में ले गया। इस गुफा की दीवारें, छत और भूमि सब सोने की थीं, पर उन पर धूल जमी हुई थी, और चारो तरफ़ जाले लगे थे, आस-पास उल्लू बोलते थे, और जंगली और देसी चिमगादड़ें जहाँ-तहाँ लटक रही थीं। गुफा में चारो तरफ़ मोहरों से भरी हुई संदूकें एक के ऊपर एक रक्खी हुई थीं, और बहुत-से ऐसे मनुष्यों की खोपड़ियाँ और हड्डियाँ पड़ी हुई थीं, जिन्होंने इन्हें खोलने के प्रयत्न में अपने प्राण गँवाए थे। इस बात को धर्मसिंह से धनमल्लजी ने छिपाया और पूछा—"अरे भले-मानस, अब तो तू मेरा गुलाम हो जा। मेरी गुलामी कुछ साधारण नहीं है। यह कहते हो कि मैं तुम्हारा गुलाम हूँ, यह सब धन तेरे अधीन हो जायगा।" धर्मसिंह ने दृढ़ता से जवाब दिया—"अरे मूर्ख, तू यह भी नहीं जानता कि सुख क्या है! मैंने तेरी अपेक्षा कहीं बढ़कर सुख देखा है।" आगे चलकर एक मैदान आया, जिसमें अनेक प्रकार के दृश्य देख पड़े। एक मनुष्य लाल-लाल आँखें निकाले दूसरे मनुष्य की छाती में मारने को छुरा उठा रहा था। दूसरा अपने पास के मनुष्य के सोने के पाँसे टेढ़ी आँख से देखकर दाँत पीस रहा था। एक आदमी मोहरों की थैली सिरहाने रखकर सो रहा था, और एक दूसरा आदमी तलवार लिए यह तदबीर सोच रहा था कि इसका गला काट डालूँ, तो थैली मिले। एक मनुष्य अपने सोने के ढेर

के पास खड़ा हुआ तलवार से पटेबाजी कर रहा था—इस डर के मारे कि कहीं कोई मेरा धन न ले जाय। कितने ही युवक एक सोने की रस्सी को आमने-सामने से खींच रहे थे। कुछ दूरी पर एक लड़ाई के मैदान में सोने, रूपे और हीरों से भरी हुई तोपें छूट रही थीं, और पास ही कितनी ही विधवाएँ अपने बालकों को गोद में लिए मुँह ढककर रो रही थीं। जहाँ-तहाँ रुधिर के धब्बे पड़ी सोने-चाँदी की पट्टियाँ पड़ी थीं। मैदान के बीच में होकर एक नदी बहती थी, जिसमें हज़ारों मनुष्य गोते खा रहे थे; और नदी के ऊपर एक पेड़ में फल लटक रहे थे, जिन्हें पकड़ने के लिये वे कूदते थे, पर वहाँ तक उनका हाथ नहीं पहुँचता था। कितने ही बालक सोने के एक कैथ के पेड़ पर से कैथ गिराने के लिये गोफिए चला रहे थे और कितने ही मोती के बेरवाली बेरियों को हिला रहे थे, परंतु एक भी कैथ नहीं गिरता था। उसी तरह बेरियों पर से जो कुछ मोती गिरते थे, उनमें से एक-एक पर दस-दस आदमी टूटे पड़ते थे। कितने ही मनुष्य खान में से सोना निकाल रहे थे, और कितने ही सोने के खेत खोदते थे। इन लोगों के मुख पर पसीने की धारें बह रही थीं, और ऐसा मालूम होता था कि बेचारों को एक दिन भी आराम नहीं मिला है। पर गोदाम और खलिहान में रक्खे जाने से पहले कितने ही आदमी सोने को छीनने की कोशिश करते हुए दिखलाई देते थे। ऐसा विचित्र दृश्य

बहुत देर तक देखना धर्मसिंह को पसंद न आया। आगे जाने से इसका अंत हो जाय, सो भी बात न थी। इस भूमि के एक तरफ़ नरक की घाटी दिखलाई दी, जिसे देख धर्मसिंह एकदम पीछे लौटा। धनमल्लजी पीछे से आवाज़ें देता रहा, परंतु यह निश्चय करके कि पीछे मुँह फेरकर नहीं देखूँगा, धर्मसिंह चला ही गया, और गुफा के बाहर निकलकर अपने निश्चित मार्ग पर रवाना हुआ। धनमल्लजी उसके पीछे घिसटता हुआ गया। रास्ते में उसने बहुत-सी अच्छी-अच्छी सेवाएँ कीं, और उनसे प्रसन्न होकर धर्मसिंह ने उसका नाम "कुबेर भंडारीजी" रख दिया। धनमल्लजी, जो अपनी गुफा में बहुत भ्रष्ट रहता था और अनगिनती मनुष्यों को मोह में डाल-कर उनसे घोर काम कराता था, अब धर्मसिंह के सत्संग से सुधर गया और उसका भद्दा शरीर भी बदलकर दिव्य बन गया।

(१) लोक-हित के कामों से धन को अलग नहीं रखना चाहिए।

(२) कंजूस और लोभी का जीवन कैसा मैला और ऊजड़ होता है!

(३) धन के लोभ से मनुष्य द्वेष, कलह आदि के वश होकर कैसे स्वार्थ से भरे काम करते हैं!

(४) युद्ध में धन का कैसा दुरुपयोग होता है! उससे कितनी अनाथ विधवाओं और बालकों का जीवन दुःखी हो जाता है!

(५) धन की तृष्णा कभी पूरी नहीं होती—एकवाला सौ की तृष्णा करता है, सौवाला हज़ार की, हज़ारवाला लाख की, लाख-वाला करोड़ की—परंतु धन की तृष्णा का अंत नहीं आता। इस अर्थ का भर्तृहरि का वाक्य याद रखना चाहिए।

(६) धन के लोभ से यदि धर्म (नीति) के मार्ग से नहीं डिगोगे, तो धन तुम्हारे पीछे घिसटता फिरेगा !

(७) धन स्वयं कोई बुरी वस्तु नहीं। धर्म (नीति) के साथ व्यवहार करने पर वह अनेक अच्छे काम करने में सहायता करता है। मैल और पाप की स्वार्थी गुफा में से निकलकर प्रकाश और पुण्य के सार्वजनिक मार्ग पर जब वह आता है, तब उसका स्वरूप दैवी हो जाता है।

४८—वचनामृत

बिना फिरे परदेस जन, भोजन कैसे पाय ?
पशु भी प्रातःकाल से, वन में चरने जाय।
घर में लक्ष्मी एक-सी, रहती नहीं हमेश ;
राज्य बढ़ाने भूपगण, जाते दूर विदेश।
विद्या सद्गुण चपलता, हिम्मत विनय निधान ;
डरै न जो परदेस से, बने वही धनवान।
बिना फिरे परदेस में, मिले न अच्छा मान ;
करता कौन समुद्र में, मोती का सम्मान।
जोड़ो धन परदेस में, करो सदा शुभ काम ;
प्रेम-सहित विधि से रहो, पाओ निर्मल नाम।
जो धन की इच्छा करो, तो मानो यह नीति ;
करो महासागर मथन, यही सदा की रीति।
कर प्रयाण परदेस में, चलकर लंबे पंथ ;
कला और विज्ञान के, लाओ बुधजन ग्रंथ।

"छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे
शुद्धे तु दर्पणतले सुलभावकाशा।"

अवतरण

बालको, मैंने तुम्हें स्वाश्रय, धैर्य, निश्चय आदि आत्म-बल के गुणों की महिमा बतलाई और यह भी बतलाया कि बड़े होने पर जीवन के एक साधन, अर्थात् धन कमाने में इन गुणों का तुम्हें कैसे उपयोग करना होगा। धन कमाने के साथ-साथ धन का उपयोग करने के विषय में भी मैंने तुम्हें कितने ही उपदेश दिए। उनमें तुमने देखा होगा कि धन परोपकार का एक बड़ा भारी साधन है और उसका सबसे बढ़-कर उपयोग परोपकार ही है। अब हमें इस विषय पर आना है कि परोपकार की वृत्ति कैसे प्राप्त करनी चाहिए। पर उससे पहले झूठ, आलस्य, लोभ इत्यादि दोषों के अतिरिक्त दूसरे कौन-कौन-से दोषों से अपना हृदय अलग रखना चाहिए, यह मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सो ध्यान-पूर्वक सुनो।

४६—मंथरा की मंत्रणा

राम को युवराज बनाना निश्चित हुआ। अयोध्यापुरी के लोग हर्ष से पागल हो गए। शहर में घर-घर उत्सव होने लगे, और ग्रामों के लोग भी खुश होकर राजतिलक देखने पुरी में आए।

कैकेयी की दासी मंथरा चंद्रमहल की छत पर खड़ी थी।

वहाँ से उसने अयोध्यापुरी की अलौकिक शोभा देखी—रास्तों में सुगंधित जल का छिड़काव हुआ है, उन पर फूल बिखरे पड़े हैं, घर-घर रंग-बिरंगी ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही हैं, और स्त्रियाँ स्नान किए, चंदन का लेप किए, हार-गहने पहने, हाथ में पकवानों की थालियाँ लिए इधर-उधर जाती हुई देख पड़ती हैं; जगह-जगह नक्कारखानों में नौबत झड़ रही है; ब्राह्मण उच्च स्वर से स्वस्तिवाचन कर रहे हैं; रास्ते में सोने-चाँदी के सींगों-वाले हृष्ट-पुष्ट बैलों के रथ, मोतियों की कलँगीवाले हिनहिनाते घोड़े, और हीरे, माणिक, पन्नों से सुसज्जित, कामदार भूलों से सजे हुए मतवाले हाथी जा-आ रहे हैं।

दूसरे महल की छत पर उसने राम की धाय, कौशल्या की दासी को उत्तम वस्त्र और गहने पहने खड़ा देखा। मंथरा ने उससे पूछा—"बहन, शहर में इतना हर्ष किस बात का हो रहा है? तू भी तो बड़े ठाट-बाट से खड़ी है!" दूसरी दासी ने उत्तर दिया—"तुझे नहीं मालूम? कल हमारे रामचंद्र का तिलक होने को है।" यह बात सुनते ही मंथरा जल उठी, बिना कुछ कहे-सुने महल की छत से झट नीचे उतरी, और कैकेयी के सोने के कमरे में आई। कैकेयी सो रही थी; उसे जगाया और बोली—"महारानी, क्या सो रही हो? राजाजी ने क्या किया, उसकी भी कुछ खबर है? राज तो राम को दे दिया! हम सब दासी बना दी गईं!" यों कहकर मंथरा ने छाती पीटना शुरू की। कैकेयी ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"मंथरा, यह क्या

करती है ? हमारे लिये जैसा भरत वैसा राम । तू जानती नहीं कि राम मुझे कौशल्या से भी ज़्यादा मानता है और राज चलाने के योग्य भी वही है, इसलिये हमारे घर तो आज घी के दिए जलने चाहिए।" यह सुन मंथरा बोली—"तुम तो कुछ भी नहीं समझतीं। अपना स्वार्थ तक नहीं समझतीं। राजा ने वरदान दिया, तब भी तुमने कह दिया कि जब मुझे माँगना होगा, माँग लूँगी। राम की चालाकी तुम क्या जानो ? उसने राजा को उलटा-सीधा समझाकर इस मौक़े पर जान-बूझकर भरत को नाना के घर भिजवा दिया है। अब तो आँखें खोलो। (उठकर चलती हुई) मुझे क्या है ? मैं तो तुम्हारे भले के लिये कहती हूँ। कल तुम्हारी कैसी दुर्दशा होती है, सो देख लेना, और फिर पीछे मेरी याद करना।" यह कहकर मंथरा चल दी।

कैकेयी के हृदय में वह ईर्षा का बीज बो गई। बीज फ़ौरन् उगा और फला। फिर रात को महाराज जब उसके महल में आए, तब उसने क्या किया, यह बात तुम अच्छी तरह जानते हो।

(१) ईर्षा एक अग्नि है, जो अचानक ही सुलग उठती है।

(२) कितनी ही बुराइयाँ ऐसी हैं, जिनसे आदमी को क्षण-भर के लिये सुख मिलता है, पर ईर्षा ऐसी बुराई है, जिससे आदमी खड़ा-ही-खड़ा जला करता है, स्वयं दुखी होता है।

(३) देखो, ईर्षालु मंथरा ने आख़िर कितना सत्यानास किया।

५०—दूसरे से ईर्षा न करने के विषय में

एक ज़मींदार एक दिन सवेरे छः बजे अपने खेत में काम

कराने के लिये मज़दूरों की तलाश में निकला। रास्ते में उसे पाँच मज़दूर मिले। उसने उनसे दिन-भर की चार-चार आने मज़दूरी ठहराकर उन्हें खेत में काम करने के लिये भेज दिया। नौ बजे वह किसी काम से बाज़ार गया। वहाँ उसे कितने ही आदमी मज़दूरी की तलाश में देख पड़े। उन्हें बुलाकर उसने कहा—"मेरे खेत में काम करने जाओ, जो वाजवी होगा, मिलेगा।" इस पर वे काम करने गए। इसी प्रकार दोपहर के बारह बजे और तीसरे पहर तीन बजे उसने कितने ही आदमियों को मज़दूरी करने भेजा। शाम के पाँच बजे वह टहलने के लिये निकला, उस समय भी उसे कितने ही निराश-मुख बैठे हुए आदमी मिले। उसने उनसे पूछा—"कैसे आलस्य में खड़े हो?" उन्होंने जवाब दिया—"सवेरे से मज़दूरी की बाट देखते खड़े हैं, पर अभी तक कोई काम नहीं मिला।" यह सुनकर उस ज़मींदार ने उन्हें भी अपने खेत में काम करने के लिये भेज दिया।

शाम हुई, छः बजे, ज़मींदार ने अपने कारिंदे को बुलाकर कहा—"हरएक मज़दूर को चार-चार आने दे दो; जो सबसे पीछे आए हैं, उन्हें सबसे पहले देना।" कारिंदे ने सबसे पहले उन मज़दूरों को चुकाया, जो पाँच बजे काम पर आए थे। दूसरों ने समझा कि हमने अधिक काम किया है, इसलिये हमें ज़्यादा पैसे मिलेंगे। पर ऐसा न हुआ; सबको बराबर पैसे मिले। इससे नाराज़ होकर वे बड़बड़ाते हुए ज़मींदार के पास

गए और बोले—"यह तो बड़ा अन्याय है ! हमने तो दिन-भर धूप सही और काम किया और ये लोग तो बिलकुल शाम को आए, तब भी सबको बराबर पैसे ?" जमींदार ने जवाब दिया—"दूसरों से ईर्षा मत करो । मेरे साथ तुम्हारा क्या ठहरा था, सो याद करो । तुम्हें यही देखना चाहिए कि जितना ठहरा था उतना मिला कि नहीं । जितना तुम्हारा हक़ है उतना लो और जाओ । दूसरों को मैं अपनी ख़ुशी से तुम्हारे बराबर देता हूँ, इससे तुम्हें क्या वास्ता ? मुझे अधिकार है कि अपना रुपया जिसे चाहूँ दूँ । दूसरों पर यदि मैं दया करता हूँ, तो तुम क्यों जलते हो ?" इसलिये पिछला पहले और पहला पीछे ।

(१) किसी पर ईश्वर की कृपा देखकर उससे ईर्षा न करनी चाहिए ।

(२) ईश्वर के गूढ़ न्याय के सामने बड़बड़ाना नहीं चाहिए । वह जो दे सो धन्यवाद सहित स्वीकार करना चाहिए ।

५१—वचनामृत

[१]

कोई कहे बिच्छू के है डंक में विशेष विष,
　　कोई कहे उससे अधिक सर्प-तन में ;
कोई कहे विष है विशेष सिर्फ़ कूकुर में,
　　कोई बतलावे विष वैरी के वचन में ।
कोई कहे विष अति रहता समुद्र-बीच,
　　कोई बतलावे विष वृक्षों के गहन में ;

सुनो बुद्धिमान ज़रा देकर के ध्यान विष,
सबसे महान है मनुष्य के ही मन में।
(दलपतराम की गुजराती कविता से)

[२]

जिसके मन में ईर्षा आई, बिना आग वह जलता भाई।
पर उन्नति को देख न सकता, बिना बात ही फिरता बकता।
नहीं गुणों का संचय करता, औरों के गुण देख पजरता।
उनको झूठे दोष लगाता, क्रोध-अग्नि हिय में भड़काता।
हो यदि रोग पीलिया भारी, पीली दुनिया दीखे सारी।
वही हाल बस उसका जानो, ऐसे लच्छण से पहचानो।
औरों की चाहे वह अवनति, केवल अपनी चाहे उन्नति।
पर क्या कर सकता बेचारा, होता वह जो विधि-निर्धारा।
जो औरों को काँटे बोता, एक दिवस खुद उन पर सोता।
जो औरों को फूल बिछाता, वह भी वैसा ही सुख पाता।
झूठे समझो वचन हमारे, तो तुम खुद कर देखो प्यारे।
(गुजराती से।)

(१) दुर्योधन की भीम-युधिष्ठिर के प्रति, कर्ण की अर्जुन के प्रति, शिशुपाल की कृष्ण के प्रति—ईर्षा के उदाहरण दो।

(२) पुराने समय में पृथ्वीराज आदि की ईर्षा से उत्पन्न हुई फूट और उसके द्वारा देश की ख़राबी का हाल बालकों को समझाना चाहिए।

(३) जातिवालों की आपस की ईर्षा, भिन्न-भिन्न जातियों की परस्पर की ईर्षा वग़ैरह से जो हानियाँ होती हैं, उन्हें बतलाना चाहिए।

५२—संतोष

एक दिन एक मोर को यह सोचकर कि मेरा स्वर कठोर है, बड़ा खेद हुआ। उसने सरस्वती देवी से प्रार्थना की—"हे दयावती देवी, मैं तेरी सवारी हूँ, और इस बात से तेरी कीर्ति में बट्टा लगता है कि कोयल की आवाज़ मुझसे बढ़कर है।" यह प्रार्थना सुनकर देवी ने उसको यों समझाया—"तू जानता है कि मीठे स्वर के कारण कोयल सुखी है, तो तू भी सुंदर पंखों के कारण सुखी है।" मोर बोला—"देवी, ऐसी आवाज़ के साथ ऐसी सुंदरता का कोई क्या करे?" देवी ने कहा—"अरे, ईश्वर ने हरएक को एक-एक गुण दिया है; तुझे सुंदरता, गरुड़ को बल, कोयल को मीठा स्वर, तोते को मनुष्य की वाणी, कबूतर को शांति। जैसे दूसरे पक्षी अपने-अपने गुणों से संतुष्ट हैं, वैसे ही तुझे भी रहना चाहिए, नहीं तो तृष्णा करके बिना दुःख का दुःख मोल लेगा।"

(१) ईश्वर ने हमें जिस स्थिति में रक्खा हो, उसी में संतोष मानना चाहिए। किसी से ईर्षा नहीं करनी चाहिए।

(२) हरएक में कोई-न-कोई अवगुण होता ही है।

(३) कहने का मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि ईश्वर की दी हुई हालत के सुधारने का यत्न न करना चाहिए; हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहने को संतोष नहीं कहते, वह तो आलस्य है। (इस संबंध में शिक्षक को चाहिए कि बालकों को "देव और गाड़ीवान" और बाइबिल की "दस टॅलंट की कथाएँ" सुनावे।)

५३—जो हो जाय, वह अच्छा ही है

काठियावाड़ में महुआ नाम का एक बंदरगाह है। वहाँ एक किसान के यहाँ एक बड़ी भैंस थी। किसान के ख़ूब खेती होती थी, इसलिये भैंस को खल-बिनौले की कुछ कमी न थी। वह खा-पीकर मस्त हो रही थी और डील-डौल में एक छोटी-मोटी हथिनी के समान दिखलाई देती थी। गाँव के दूसरे पशुओं, गाय-भैंस आदि को वह अपने सींगों से बहुत हैरान करती थी। पर जिस प्रकार मस्त हाथी अपने ही ऊपर धूल फेंकता है, उसी तरह एक बार भैंस के सींग भैंस को ही भारी पड़ गए। एक दिन सवेरे वह चरने गई, तो वहाँ एक दूसरी भैंस से लड़ गई। उस भैंस के सींग इस मस्त भैंस के पैर में अटक गए। इसी खींच-तान में यह गिर पड़ी और इसका पैर टूट गया। किसान की स्त्री दूसरों की मदद से इसे ज्यों-त्यों करके घर लाई, और इसकी मरहम-पट्टी की। शाम को किसान जब खेत से आया, तो उसकी स्त्री ने कहा—"आज हमारा बड़ा नुक़सान हुआ, हमारी भैंस का एक पैर दूसरी भैंस से लड़ने में टूट गया।" किसान संतोषी था, कहने लगा—"जो हो जाय, वह अच्छा ही है।" उसकी स्त्री बिगड़कर बोली—"तुम्हें तो कुछ घर की फ़िक्र ही नहीं; मानो संसार से कोई नाता ही नहीं है! जब से रात को ब्यालू करके उस भक्तदास बाबा के यहाँ जाना शुरू किया है, तभी से तुम ऐसे हो गए हो। ज़रा सोचो तो सही कि भैंस को घर बाँधकर खिलाना पड़ेगा, वह कहाँ से आवेगा? और अगर

कहीं पैर सड़ गया, उसमें कीड़े पड़ गए और भैंस मर गई, तो साठ-सत्तर रुपए का नुक़सान होगा। यह सब भी सोच-विचार कर लिया है कि यों ही कहते हो कि जो हो जाय, वह अच्छा ही है?"

किसान बोला—"जो हो गया, उसके बारे में सोच करने से क्या फ़ायदा? इसलिये यह विचार कर कि जो हो जाय, वह अच्छा ही है, संतोष रखना चाहिए।"

इससे स्त्री को शांति नहीं हुई; उसका हृदय जला ही किया। इस बीच में मैदान में ढोल बजा और पूछने पर मालूम हुआ कि बंजारे गाँव-भर के ढोरों को हाँक ले गए।

यह ख़बर सुनकर किसान तुरंत कहने लगा—"ले देख, जो मैं कहता था कि जो हो जाय, वही अच्छा है, सो ही हुआ कि नहीं? भैंस का पैर टूटा, इसलिये वह घर बँधी रही, नहीं तो उसे भी लुटेरे ले जाते। पैर तो दो दिन में ठीक हो जायगा, पर यदि भैंस जाती रहती, तो फिर न मिलती। ईश्वर की गति ही दूसरी है।" यह सुन स्त्री शांत हो गई।

(कौतुकमाला से)

५४—दुःख का पहाड़

सुकरात का कहना है कि यदि मनुष्य-जाति के सब दुःख एक जगह इकट्ठे किए जायँ, और फिर उनमें से सबको बराबर दुःख बाँट दिया जाय, तो जो मनुष्य अपने को अब सबसे ज्यादा

दुःखी समझता है, वह भी कहेगा कि उसकी पहली दशा अच्छी थी। संसार का अनुभवी कवि होरेस कहता है कि तुम चाहे जिस मनुष्य के साथ अपनी हालत का बदला कर देखो, अंत में तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारी पहली हालत कहीं अच्छी थी।

मैं अपनी आराम-कुर्सी पर पड़ा-पड़ा इन दोनो वाक्यों पर ग़ौर कर रहा था कि मेरी आँखें बंद हो गईं, और मुझे एक अनोखा सपना दिखलाई दिया।

मानो विधाता ने ढिंढोरा कराया है कि सब मनुष्य अपने-अपने दुःखों का ढेर इस मैदान में लगा दें। मैदान के एक कोने में खड़े होकर मैंने देखा कि यह मनादी सुनकर सब लोग बहुत ख़ुश हुए। वहाँ कल्पना नाम की एक स्त्री थी, वह आगे होकर झट सबकी गठरियाँ बँधवाने लगती थी। उसके पास एक आईना था; उसे वह हरएक मनुष्य की गठरी के आगे रख देती थी, जिससे गठरी ख़ूब बड़ी दीखने लगती थी। इस तरह यह सोचकर कि इतने अधिक दुःख के भार से छूटने का समय आज आया है, सब लोग बड़ी ख़ुशी से अपने-अपने दुःखों की गठरी इस मैदान में रख जाते थे।

एक मनुष्य बग़ल में एक गठरी छिपाकर रख गया। मैंने देखा कि उसमें दरिद्रता बँधी हुई थी। एक दूसरा तो अपनी स्त्री को ही गठरी में बाँधकर रख गया। इसी प्रकार एक स्त्री अपने पति को ढेर में पटक गई। शरीर के दुःख रखनेवाले भी बहुत थे। एक मनुष्य अपना कुब्ब रख गया; एक आदमी अपनी

चपटी नाक की पोटली बाँधकर रख गया; एक मनुष्य अपने पेट का दर्द रख गया; और एक मनुष्य अपनी गठिया डाल गया। पर मुझे एक भी मनुष्य ऐसा दिखलाई न पड़ा, जिसने अपना पाप या मूर्खता रक्खी हो। दुर्गुण और व्यसन (लत) का शिकार, जवान होने पर भी बुड्ढा दीखनेवाला एक छैला आया। मैं समझता था कि यह अपने पाप यहाँ पटकेगा, परंतु मैंने देखा कि पाप के बदले वह उसकी याद (पाप का स्मरण) एक रूमाल में बाँधकर लाया था, और उसी का रूमाल फटकारकर यहाँ रख गया।

इतने में कल्पनादेवी मेरे पास आई, और मेरे मुख के सामने अपना दर्पण रखकर पूछा—"क्यों, तुम्हें इस ढेर में कुछ रखना है?" मुझे अपना चपटा पोपला मुँह पहले से ही बुरा मालूम होता था; दर्पण से तो वह क़रीब एक गज पोला दिखलाई देने लगा। इसलिये मैंने भी कहा—"देवी, मुझे यह अपना रावण का-सा मुँह पसंद नहीं, इसलिये मुझे इसी को ढेर में रखना है।" यह कहकर मैंने भी अपनी सूरत उस ढेर में रख दी। मेरे पास ही एक लंबे मुँहवाला आदमी खड़ा था, उसने मुझे देखकर अपना लंबा मुँह ढेर में फेक दिया। हम सब यह देखते हुए खड़े थे कि इतने में विधाता ने फिर हुक्म निकाला कि इस ढेर में सब प्रकार की चीज़ें हैं, और उनकी गठरी बाँधकर कल्पनादेवी तुम्हारे सामने रखती है; उनमें से एक-एक उठा लो। सबने उठाना शुरू किया। एक बुड्ढा पेट

के रोग रख गया था, और उसे, जायदाद बहुत होने के कारण, एक पुत्र की इच्छा थी, इसलिये उसके हिस्से में एक लड़के की गठरी आई। लेकिन पाव घंटे में ही यह लड़का ऐसा कपूत साबित हुआ कि उसने बुड्ढे की दाढ़ी पकड़कर, उसके दो-चार बचे हुए दाँत भी तोड़ डाले। एक चिट्ठीरसाँ था, जिसे हमेशा दस-बारह गाँव नापने पड़ते थे। इससे घबराकर उसने कुर्सी पर बैठकर काम करने की नौकरी माँगी थी; उसके हिस्से में कुर्सी की बैठक और गठिया की गठरी आई। जो दरिद्रता रख गया था, उसके हिस्से में बीमारी आई, और जो पेट की जलन रख गया था, उसके हिस्से में अजीर्ण आया। अपने पति को पटक जानेवाली स्त्री को वैधव्य और अन्न का अभाव मिला, और स्त्री फेकनेवाले पुरुष के हिस्से में स्त्री-हीन घर आया। अब मेरी सूरत को जो दशा हुई, सो सुनो। मेरे पड़ोसी के हिस्से में मेरी चपटी और पोपली सूरत आई; यह देखकर मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। वह बेचारा सुस्त पड़ गया। परंतु मेरा नंबर भी दूर न था। मेरे हिस्से में लंबा मुख आया, और कपाल तक हाथ ले जाने में मेरा हाथ नाक से इस ज़ोर से टकराया कि मैं कभी न भूलूँगा।

इस प्रकार हम सब समझते थे कि दुःख से छूटेंगे, लेकिन असल में इतना ही हुआ कि पुराने दुःखों से छूटकर नए दुःखों में पड़ गए। और चूँकि वे नए थे, इसलिये हमें उनके सहन करने की आदत नहीं थी, इस कारण वे पहले दुःखों से भी

अधिक भारी मालूम होने लगे। विधाता को हमारे ऊपर दया आई। उन्होंने दूसरा ढिंढोरा पिटवाया कि जिसकी इच्छा हो वह नए दुःखों को रखकर पुराने दुःख ले जाय। हम इस ढिंढोरे को सुनकर बहुत खुश हुए, और अपने-अपने नए दुःख इस ढेर में रखकर पुराने दुःख लेने पर टूट पड़े।

इतने अनुभव के बाद ईश्वर ने हमारे ऊपर कृपा की। हमारे पास एक देवी भेजी, जिसका नाम प्रज्ञा (बुद्धि) देवी था। उस देवी ने हमारे नेत्रों में एक ऐसा अनोखा तेज भर दिया कि वह दुःख का पहाड़ एकदम छोटा हो गया, और हर-एक को अपना दुःख कैसे सहन करना चाहिए, इसकी कुंजी हमारे हाथ आ गई।

थोड़ी देर में मेरी आँख खुल गई। इस स्वप्न से मैंने इतने उपदेश लिए—

(१) अपने दुःखों से कभी घबराना नहीं चाहिए।

(२) दूसरे के सुख से जलना नहीं चाहिए, क्योंकि हमको इस बात का ख़याल नहीं होता कि उसको कितने दुःख हैं।

(३) दूसरों के दुःखों को हलका न समझते हुए सब मनुष्यों को मित्रता और दया की निगाह से देखना चाहिए।

५५—वचनामृत

[१]

समता—अर्थात् मन को स्थिर रखना और आपे से बाहर न हो जाना—सुख के समय का सद्गुण है और हिम्मत तथा धैर्य दुःख के

समय का । सुख के साथ-साथ बहुत भय और कटुता न लगी हो, सो बात नहीं। दुःख भी दिलासा और आशा से खाली नहीं होता। हम कसीदे और चित्रकारी के काम में देखते हैं कि खुलते हुए रंग की ज़मीन पर गहरे चित्र की अपेक्षा गहरे रंग की ज़मीन पर खुलते हुए रंग का चित्र अच्छा दीखता है। जैसे नेत्र को रंग के, वैसे हृदय को सुख-दुःख के विषय में समझना चाहिए। सचमुच, सद्गुण तेज़ सुगंधि देनेवाली चीज़ (धूप, चंदन) के समान है; जितना पिसे और जले, उतनी ही अधिक सुगंधि देता है। सुख में दुर्गुण प्रकट होते हैं और दुःख में सद्गुण।

—बेकन

[२]

सुख-दुख का विचार मत करना, ये तो रहते ही हैं साथ,
नहीं किसी के टाले टलते, करता-धरता हैं रघुनाथ।
नल राजा-सा नर न दूसरा जिसकी दमयंती रानी,
आधा वसन लपेट फिरी वन में, न मिला खाना-पानी। सुख-दुख०
वही द्रौपदी जिसके पति थे बलशाली पांडव भाई,
बारह बरस फिरी वन में, कब नींद चैन की सो पाई? सुख-दुख०
सीता-जैसी सती कि जिसके स्वामी रघुपति मन भाए,
रावण द्वारा हरी गई, क्या-क्या न दुःख उसने पाए। सुख-दुख०
मंदोदरि रानी का पति था रावण-जैसा रणबंका,
काटे गए दसों सिर उसके लुटी स्वर्ण की वह लंका। सुख-दुख०
हरिश्चंद्र-से सत्यव्रती की थी तारालोचनि रानी,
उस पर पड़ी बिपति अति भारी, भरा नीच के घर पानी। सुख-दुख०

(नरसिंह महता की गुजराती कविता से)

[३]

"हे जगत् के गुरु (उपदेष्टा और पिता), हमें स्थान-स्थान पर

नित्य भले ही ऐसी विपत्तियाँ मिलें कि जिनमें आपका दर्शन हो।"
(कृष्ण के प्रति कुंती का वचन)

—भागवत

शिक्षक को चाहिए कि बालकों से ऊपर की कविता में वर्णित महान् स्त्री-पुरुषों के धैर्य की कथा कहे।

५६—आत्मदर्शन

एक पुरुष के दो छोटे बालक थे, एक लड़का और एक लड़की। लड़का बड़ा रूपवान् था और लड़की का रूप साधारण था। एक दिन दोनो बालक दर्पण के पास खेल रहे थे कि इतने में लड़के ने लड़की से कहा—"बहन, इस दर्पण में देखने से कौन रूपवान् मालूम होता है ?" लड़की को यह बात बुरी लगी। उसने समझा कि भाई ने मुझे लज्जित करने को यह बात कही है। उसने भाई की शिकायत बाप से की और कहा—"पिताजी, दर्पण में मुख देखकर प्रसन्न होना तो स्त्रियों का काम है ? इसमें चित्त देना पुरुष को कदापि उचित नहीं।" पिता ने दोनो का मेल कराकर उनको समझा-बुझा दिया। उसने कहा—"बालको, तुम्हें लड़ना नहीं चाहिए। आज से तुम दोनो दर्पण देखते रहो ; लड़के, तू तो इसलिये देखा कर कि तेरे समान सुंदर मुख पर यदि दुर्गुण का मैल लग गया, तो उसकी शोभा जाती रहेगी ; और लड़की, तू इसलिये देख कि तेरे रूप में जो कमी है, वह तेरे गुणों से पूरी हुई कि नहीं।"

(१) दर्पण क्या है ? अपना मन—अपने मन में अपने गुण-दोष को हमेशा विचारकर देखना चाहिए।

(२) "दर्पण में मुख देखना"—विशेषकर अपने दोष देखने के लिये, गुण देखने के लिये नहीं।

(३) "दूसरे का दोष सरसों के बराबर भी हो, तो भी बड़ा मालूम देता है, और अपना दोष बेल-फल या शहतीर के बराबर हो, तो भी छोटा दीखता है।" (भर्तृहरि, बाइबिल आदि)—यह मनुष्य का साधारण स्वभाव है। इससे होशियार रहना चाहिए।

५७—झूठा संतोष

कहा जाता है कि नार्सिसस बड़ा रूपवान् था, पर साथ ही बड़ा घमंडी भी था। उसे संसार में अपने समान कोई दूसरा दिखलाई ही नहीं देता था, और इसी से अपने कुछ नौकरों के साथ वन में अकेला रहने में ही वह आनंद मानता था। उसके अनुचर भी उसी की तरह किसी को नहीं गिनते थे। इस मंडली को मालिकिन प्रतिध्वनि (गूँज) देवी थी, जो सदा इनकी ही बोली बोलती थी। एक समय ऐसा हुआ कि वह एक तालाब पर आ निकला, जिसका पानी दर्पण के समान स्वच्छ था। वह दोपहर की धूप से थक गया था, विश्राम लेने को उस सरोवर के किनारे बैठ गया। पानी में अपने मुख की परछाईं देखने पर मुँह उसे इतना सुंदर लगा कि वह वहीं-का-वहीं ठक रह गया। उसे भूख-प्यास का भी ख़याल न रहा। इससे दिन-पर-दिन सूख-

सूखकर उसके शरीर का नाश हो गया, और उसका नार्सिसस नाम का सुंदर पुष्प बन गया। यह पुष्प वसंत-ऋतु के आरंभ में खिलता है और वह प्लूटो तथा प्रोसर्पिना का प्रिय समझा जाता है।

इस ग्रीक पौराणिक कथा का मतलब यह है कि जो पुरुष सौंदर्य तथा ऐसे दूसरे गुण लेकर जन्म लेते हैं और स्वयं उद्योग और श्रम करना नहीं जानते, वे मदोन्मत्त होकर—अपने ही अभिमान में मस्त रहकर—अंत में नष्ट हो जाते हैं। इन दोषोंवाले मनुष्यों की एक खासियत यह होती है कि उन्हें जीवन में पड़ना और संसार के धक्के खाना पसंद नहीं होता, क्योंकि संसार में तो कठिन खोटी-खरी निंदा और तिरस्कार सहने के मौक़े प्रायः आ जाते हैं और ये उन्हें बुरे लगते हैं। इसलिये वे ज्यादातर कुछ ख़ुशामदियों और हाँ-में-हाँ मिलानेवालों की सोहबत में बैठकर एकांत में और घर में ही जीवन बिताते हैं। इस आदत की वजह से वे अपने दोष नहीं देख सकते और अपनी अच्छाई के दर्शन में ही डूबे रहते हैं। नतीजा यह होता है कि वे आलसी और निकम्मे हो जाते हैं और उत्साह और फ़ुर्ती से बिलकुल हाथ धो बैठते हैं। वसंत के आरंभ में नार्सिसस का फूल ऐसे मनुष्यों के लिये बड़ा अच्छा दृष्टांत है। जवानी के आरंभ में ऐसे मनुष्यों से बड़ी आशाएँ की जाती हैं, पर अंत में सब व्यर्थ निकलती हैं। यह फूल मृत्युदेव (यम-देव) पर चढ़ाया जाता है, सो ठीक ही है, क्योंकि ऐसे मनुष्य

संसार के किसी काम के नहीं। जिसमें से कोई फल न निकले, उसका होना न होना बराबर है, जैसे समुद्र के पानी पर जहाज़ की लकीरें।

(बेकन से)

(१) अपना मुख देखने का सच्चा दर्पण निर्जन वन का सरोवर नहीं है, बल्कि घनी बस्ती से भरा हुआ जगत् है।

(२) यह नहीं देखना चाहिए कि थोड़े-से ख़ुशामदी मनुष्य हमें क्या कहते हैं—संसार क्या कहता है, यह देखना चाहिए।

(३) अपने हिसाब हम चाहे बिलकुल अच्छे हों, परंतु जब तक संसार में नहीं आते, तब तक हमें अपनी कमी नहीं मालूम पड़ सकती। इसलिये सबसे निस्संकोच मिलना-जुलना चाहिए।

(४) इससे अपने सद्गुण दृढ़ होते हैं और फूल की तरह मुरझाते नहीं, बल्कि दिन-पर-दिन बढ़ते और फल देते हैं।

(५) कितने ही बालक पढ़ने में तो होशियार होते हैं, पर अपने सहपाठियों से अलग रहते हैं। उनकी कमी की ओर शिक्षक को ध्यान दिलाना चाहिए और उसका सुधार करना चाहिए। उसके सुधार का अच्छा तरीक़ा यह है कि उनको दूसरे बालकों के साथ खेल-कूद में शामिल किया जाय।

(६) जो विद्यार्थी ऊँचे दर्जे के हैं, उन्हें चाहिए कि इस आख्यायिका (कहानी) को अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखलावें। दूसरे लोगों से अलग रहना, ऐसा ख़याल करना कि हमारा तो सभी अच्छा है और उसमें सुधार की गुंजायश ही नहीं है, नार्सिसस की भूल के समान है।

५८—अपने गुण का अभिमान न करना

एक समय ख्वाजा हसन दजला नदी के किनारे-किनारे जा रहे थे कि इन्हें एक हबशी मर्द और औरत नदी-किनारे एकांत में बैठे बातचीत करते हुए दिखाई दिए। उनके पास एक बोतल भी पड़ी हुई थी। यह देख इन्होंने सोचा कि ऐसे लोगों से तो मैं अवश्य अच्छा हूँ, क्योंकि मैं व्यसनी और दुराचारी नहीं। हसन की दृष्टि से उन दोनों ने समझ लिया कि इसे हमारे बारे में कुछ शक हुआ है; पर जब तक वह कुछ पूछे नहीं, तो हमें क्या पड़ी है कि उससे कुछ कहें। इतने ही में पास होकर एक नाव निकली और अचानक पवन के झोंकों से उलट गई। सात मनुष्य, जो उसमें बैठे थे, नदी में डूबने लगे। देखते ही वह हबशी नदी में कूद पड़ा और एक-एक कर सातों को निकाल लाया। छठे को नदी-किनारे खींचकर सातवें को लेने जाते समय उसने हसन की तरफ़ देखकर कहा—"आइए जनाब, आप समझते हैं कि दुनिया में सभी बुरे हैं और मैं ही अच्छा हूँ। अगर सच्चे परोपकारी हो, तो इस सातवें की मदद के लिये आओ। तुम्हारे मन में जो एक शक पैदा हुआ है, उसे भी मैं दूर कर दूँ; यह मेरी मा है और उस बोतल में पानी है, इस रेतीले मैदान में होकर छः गाँव जाना है, रास्ते में शायद प्यास लगे, इसलिये इस बोतल में नदी से पानी भर लिया है।" ख्वाजा हसन यह सुनकर बड़े लज्जित हुए और उसी दिन से उन्होंने दूसरों का दोष देखना और अपने गुणों का अभिमान करना छोड़ दिया।

(१) जो मनुष्य यथार्थ में सद्गुणी है, उसे अपने गुण का अभिमान नहीं होता।

(२) अपने से नीचों के दुःख और अपने से ऊँचों के गुण देखने चाहिए। दूसरे का दुःख देखकर अपने सुख के लिये ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिए, दूसरे का सद्गुण देखकर अपने दोष के लिये ईश्वर के सम्मुख लज्जित होना चाहिए।

(३) सद्गुण अनेक प्रकार के हैं। जो अपने में नहीं, वह दूसरों में होते हैं; कोई शूरवीर होता है, कोई दानशील होता है—इत्यादि।

(४) एक ही सद्गुण को व्यवहार में लाने के अनेक मौक़े होते हैं। जैसे युद्ध में बंदूक़ लेकर सामने लड़नेवाला सिपाही, और अनगिनती गोलियों की वर्षा के बीच में झंडा लेकर खड़ा होनेवाला निशानदार दोनो बहादुरी दिखलाते हैं।

(५) एक ही सद्गुण को व्यवहार में लाने की शक्ति सबकी एक-सी नहीं होती—जैसे, जगत् में एक ही तरह से परोपकार नहीं होता, कोई धन से करता है, तो कोई तन से करता है, जो अपने से न बन पड़े वह दूसरे से होता है।

(६) कोई साधु किसी धनवान् पुरुष को उपदेश करके एक ख़ैराती दवाख़ाना खुलवावे, उसके बनाने में गाँव के लोग मुफ़्त में मज़दूरी करें; डॉक्टर मुफ़्त में अपनी विद्या से दूसरों का फ़ायदा करे; और एक अधपढ़ विद्यार्थी मुफ़्त में कंपौंडर का काम करे; और एक मेहतर बिना वेतन लिए मकान की झाड़ाबुहारी करे; तो ये सब अपनी-अपनी रीति से परोपकार करते हैं। इनमें से किसी को यह न समझना चाहिए कि दुनिया का भला केवल मैं ही करता हूँ।

५६—धनमद

रूस का एक रईस काफ़ीख़ाने में गया। वहाँ एक काँच का बर्तन उससे टूट गया। काफ़ीख़ाने के मालिक का ऐसा हुक्म था कि जिस नौकर के पास का एक भी बर्तन टूटे, उसी से वह लिया जाय। इसलिये नौकर ने बर्तन की क़ीमत देने के लिये अमीर से बड़ी नम्रता के साथ प्रार्थना की। अमीर एकदम आग-बबूला हो गया और बोला—"जानता है कि किससे कह रहा है?" इस प्रकार अपने धन के मद में उसे धमकाकर उस अमीर ने लकड़ी से और भी बीस-पचीस बर्तनों को चूर कर दिया और फिर नुक़सान से दुगुनी क़ीमत का एक नोट उस नौकर के मुँह पर फेंक और गाड़ी में बैठकर चल दिया।

(१) धन के घमंड में किए गए कामों को उदारता नहीं समझना चाहिए।

(२) वृथा नुक़सान करने का हक़ धनवान् को भी नहीं है।

(३) मूर्ख और घमंडी अमीर ने समझा कि नोट तो मेरा ही है और उसके दे देने से हानि का बदला पूरा हो गया। पर उसे यह नहीं मालूम है कि कोई जायदाद केवल अपनी या दूसरे की ही नहीं होती, एक तरह से उसमें सभी का कुछ-न-कुछ हक़ होता है। नोट देने से नौकर को तो हर्जा मिल गया, लेकिन लोगबागों के काम में जो आनेवाले बर्तन फूटे, वह तो फूटे ही।

(४) यहीं यह भी समझना चाहिए कि घमंड और क्रोध एक दूसरे से कितने मिले हुए हैं।

६०—अनुचित क्रोध

पोलियो नाम के एक अमीर सरदार ने रोम के सम्राट् आगस्टस सीज़र को अपने घर बुलाया। उसने राजा को ख़ुश करने के लिये अपना मकान बड़ी अच्छी तरह सजाया, और फूल, रोशनी, संगीत इत्यादि सामग्री में कोई भी कमी नहीं रक्खी। राजा और पोलियो साथ बैठे थे और समाने नाच हो रहा था, इतने में पोलियो के एक ग़ुलाम से एक काँच का बर्तन ज़मीन पर गिर गया। इस पर पोलियो ने एकदम क्रोधित होकर कहा—"इस हरामख़ोर को जोंकों के तालाब में डाल दो।" राजा ने सामने की मेज़ पर से कितनी ही सुंदर नक़्क़ाशीदार काँच की चीज़ें मँगवाईं और उनको चूर-चूर कर डाला! पोलियो सन्न रह गया और समझ गया कि राजा ने मुझे यह उपदेश दिया है कि तूने मनुष्य की जान से काँच के बर्तन को बढ़कर समझा। इस तरह पछताकर उसने उस ग़ुलाम की सज़ा माफ़ कर दी।

न्यूटन के कुत्ते (डायमंड) ने उसकी अमूल्य पुस्तक को नुक़सान पहुँचाया, उस समय न्यूटन ने कितनी शांति रक्खी, इत्यादि संयम के उदाहरण यहाँ पर देने चाहिए।

६१—वचनामृत

क्रोध

दूसरे दुर्गुणों से तो हमारे विचारों में ही विकार पैदा होता है;

पर क्रोध से तो हम पागल बन जाते हैं। दूसरे दुर्गुण धीरे-धीरे धावा करते हैं और दिखलाई न देते हुए बढ़ते हैं, परंतु क्रोध में तो मनुष्य का मन एकदम तेज़ी से उछलने लगता है। क्रोध से बढ़कर कोई आदत पागलपन की नहीं, और न कोई इसके बराबर मनुष्य की आत्मा को हानि पहुँचाती है। क्रोध विजय पाकर अभिमानी और हार पाकर पागल हो जाता है। हार से क्रोध थकता नहीं; दुश्मन कभी हाथों से बाहर निकल जाय, तो यह दूर खड़ा-खड़ा दाँत पीसता है। क्रोध की तेज़ी के लिये किसी कारण की ज़रूरत नहीं; बिना किसी कारण के ही यह आकाश तक भभक उठता है।

एरिस्टोटिल क्रोध की हिमायत करता है और कहता है कि क्रोध का दमन न करना चाहिए, क्योंकि उससे कभी-कभी सद्गुणों को उत्तेजन मिलता है; उसके बिना हमारा मन शस्त्र-हीन हो जाता है और बहादुरी के काम करने में मंद पड़ जाता है।

इसके उत्तर में कहना चाहिए कि क्रोध बड़ा भद्दा और जंगली दोष है, जो मनुष्य आप-से-आप न चलकर धक्के खाता फिरे, मानो तूफ़ान में चल रहा हो, उसे भला आदमी कैसे कहा जा सकता है? यह विकार शांत-बुद्धि को, जिसके बिना सद्गुण कुछ कर ही नहीं सकते, गड़बड़ में डाल देता है। जैसे बीमार को दौरे की तेज़ी होती है, जो थोड़ी देर की होने पर भी उसका नुक़सान करने में मज़बूत साबित होती है, उसी प्रकार क्रोध के समान भद्दा कोई दूसरा दोष नहीं। क्रोधी मनुष्य कैसा ख़ूँख़्वार दिखलाई देता है? थोड़ी ही देर पहले उसके मुख पर रुधिर का नाम-निशान भी नहीं रहता, और थोड़ी ही देर में वह ऐसा लाल दीखता है, मानो रुधिर से रँग दिया गया हो! उसकी आँखें थोड़ी ही देर में तो चक्कर में फिरती दिखलाई देती हैं, मानो बाहर ही निकली पड़ती हों, और थोड़ी ही देर में वे एकाग्र दृष्टि से स्थिर और स्तब्ध हो जाती हैं। और उसके दाँत देखो, इस प्रकार

आपस में किसकिसाते हैं, मानो किसी को खा जाना चाहते हों। वे जंगली सूअर के दाँतों की तरह कचर-कचर करते हैं।

इसके अलावा हाथ मटकाना, छाती कूटना, हाँफना, टूटी-फूटी बातें कहना, ओठ फड़फड़ाना, काटना इत्यादि दूसरे अंगों की हालत भी बड़ी भद्दी होती है। पशु भी गुस्से में शायद ही उससे अधिक जंगली दीख पड़ता हो।

चाहे जो हो, परंतु क्रोध नहीं करना चाहिए। ऊपर आकाश की ओर दृष्टि करो, तारों के पास ऊँची जगह पर बादल लौट नहीं पड़ते अथवा किसी प्रकार का तूफ़ान नहीं होता, सब शांत है। बिजली भी उनके नीचे के प्रदेश में चमकती है। उसी प्रकार उच्च अंतःकरण सदा शांत वायुमंडल में वास करता है, क्रोध उत्पन्न करनेवाली सारी वृत्तियों का वह दमन करता है, नम्र रहता है और सम्मान पाता है।

(सेनेका से)

६२—दुर्योधन और अर्जुन

अथवा

विनय

कौरव-पांडवों ने युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। हरएक पक्ष ने अपने-अपने मित्रों को युद्ध के लिये इकट्ठा करना शुरू किया। भिन्न-भिन्न देशों के राजों को बुलाने के लिये दूत भेजे गए। पर श्रीकृष्ण को बुलाने के लिये उनका ख़ास मित्र अर्जुन स्वयं द्वारका गया। अर्जुन के द्वारका जाने की ख़बर सुनकर दुर्योधन भी उसके पीछे चला। कुरुवंश के दोनो वीर दुर्योधन और अर्जुन एक ही समय द्वारका-नगरी में दाख़िल हुए और

श्रीकृष्ण से मिलने उनके राज-महल में पहुँचे। उस समय श्रीकृष्ण सोते थे। दुर्योधन पहले पहुँच जाने की चिंता में उतावला था। वह झट से श्रीकृष्ण के सोने के कमरे में घुस गया, और उनके पलँग के सिरहाने उत्तम आसन पर जा बैठा। अर्जुन पीछे से आया, और सदा की तरह श्रीकृष्ण के पाँयते के पास विनय-पूर्वक हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। थोड़ी देर में श्रीकृष्ण जगे और अपने सामने अर्जुन को खड़ा देखा। दुर्योधन ने समझा कि श्रीकृष्ण ने उसे न देख पाया, इसलिये उसने खखारा और अपनी ओर श्रीकृष्ण की दृष्टि खींची। श्रीकृष्ण ने दोनो का स्वागत किया और पूछा—"कहो, तुम्हारा दोनो का किस कारण से यहाँ आना हुआ?" इस पर दोनो में से पहले दुर्योधन मुस्किराकर बोला—"हमारा और पांडवों का युद्ध होने-वाला है, उसमें अपने पक्ष में आपकी मदद लेने को मैं आया हूँ।" श्रीकृष्ण ने कहा—"भाई, मेरे लिये तो तुम दोनो बराबर हो, मैं किसका पक्ष ले सकता हूँ?" दुर्योधन बोला—"परंतु हम दोनो में तुम्हारे पास पहले कौन आया?" श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"तुम आए होगे, पर मैंने अर्जुन को तुमसे पहले देखा है। लेकिन ख़ैर, तुम पहले आए हो इसलिये तुम्हारी, और अर्जुन को मैंने पहले देखा है इसलिये उसकी, दोनो ही की मदद युद्ध में करूँगा; और वह इस प्रकार कि एक को मैं अपनी सेना दूँगा और दूसरी ओर मैं अकेला रहूँगा; और मैं इस शर्त पर रहूँगा कि अपने हाथ में हथियार न लूँगा।" दुर्योधन ने सोचा कि

कृष्ण लड़ेंगे तो हैं ही नहीं, फिर मैं इनको लेकर क्या करूँगा ? इनकी सेना होगी तो मेरे काम आवेगी। ऐसा विचारकर वह कृष्ण की सेना माँगना चाहता ही था कि कृष्ण ने कहा— "तुममें से पहले कौन माँगेगा ? तुम दोनों में अर्जुन छोटा है, इसलिये मेरी राय में पहले मुझे इसकी मनोकामना पूरी करनी चाहिए।" यह बात दुर्योधन को पसंद न आई, परंतु उसने सोचा कि इस समय कृष्ण के पास अपना मतलब निकालने को आया हूँ, इससे उन्हें नाराज़ करना भी ठीक नहीं। बोला—"हाँ-हाँ, मुझे कोई उज्र नहीं है।" अर्जुन ने कहा—"महाराज, मैं तो आपको माँगता हूँ।" इस उत्तर को सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ और मन में कहने लगा कि दैव ने अर्जुन को खूब भुलाया !

बालको, तुम अच्छी तरह जानते हो कि दैव ने किसे भुलाया— अर्जुन को अथवा दुर्योधन को।

(१) ईश्वर निस्स्वार्थी, निष्कपट और नम्र आदमी का है ; स्वार्थी, दग़ाबाज़ और अभिमानी का नहीं।

(२) अर्जुन श्रीकृष्ण का मित्र और भक्त था, और मित्रभाव तथा भक्तिभाव से उनकी मदद लेने गया था; दुर्योधन, जिसने कभी इससे पहले श्रीकृष्ण में प्रीति नहीं दिखलाई थी और न कभी श्रीकृष्ण का कहा माना था, इस समय केवल स्वार्थ के लिये, अर्जुन को जाता देखकर, द्वारका जा पहुँचा था।

(३) दुर्योधन सोने के कमरे में पहले घुस गया। स्वार्थी मनुष्य उतावला हो जाता है, गंभीरता छोड़ देता है और बालक-जैसा बन जाता है, फिर भी उसका अभिमान उसे नहीं छोड़ता। वह छाँटकर अच्छे-से-अच्छे आसन पर बैठता है। जब उसे मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण ने

उसे नहीं देखा, तब कितनी असभ्यता से उसने श्रीकृष्ण का ध्यान अपनी ओर खींचा।

(४) इसके विरुद्ध अर्जुन को देखो। मित्रभाव से मदद लेने वह श्रीकृष्ण के पास गया, और गंभीरता तथा विनय से उनके पास जाकर खड़ा रहा। बैठा नहीं, बल्कि खड़ा रहा! दुर्योधन लबर-लबर किया करा, परंतु उसने उसकी बातों में सिर नहीं खपाया। और अंत में जब माँगने का समय आया, तो कैसी निस्स्वार्थ याचना की!

(५) इस जगत् के सब पदार्थ—धन, सत्ता इत्यादि—ईश्वर की सेना हैं। वे जब तक ईश्वर के साथ रहते हैं, तब तक—अर्थात् सत्पुरुष के हाथ में ही—जगत् को लाभ पहुँचाते हैं; दुष्ट के हाथ में वे किसी काम के साबित नहीं होते। सत्पुरुष सदा ईश्वर ही को माँग लेते हैं। ईश्वर स्वयं कुछ नहीं करता, उद्यम तो हमें ही करना पड़ता है, हाथ-पैर हमें ही हिलाने पड़ते हैं, परंतु ईश्वर का वास ही हमारे उद्यम को सफल करने के लिये काफ़ी है। "जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धारी (उद्यमी) अर्जुन हैं, वहीं लक्ष्मी, वहीं विजय, वहीं कल्याण, वहीं सनातन नीति है, ऐसा मैं मानता हूँ।" इस महा-वाक्य का यही मतलब है।

६३—सदाचार का अभिमान और ढोंग

एक कथा है कि एक बार किसी उत्सव के मौक़े पर चार देवता स्वर्ग से पृथ्वी पर आए। उनके हाथ में अलौकिक पुष्पों की मालाएँ थीं, जिनका रंग और सुगंधि ऐसी अपूर्व थी कि सब लोग उनसे पूछने लगे—"भगवन्, ये पुष्प कहाँ पर होते हैं? इनका अधिकारी कौन है?" देवतों ने उत्तर दिया—"हे मनुष्यो, ये पुष्प स्वर्ग में होते हैं; ज्ञानी और धर्मात्मा इनके

अधिकारी हैं; अज्ञानी और पापियों को ये नहीं मिलते।" एक देवता ने खास तौर से यह भी कहा—"जो चोरी नहीं करता, जो झूठ नहीं बोलता, लोक में वाह-वाह होने पर जो अभिमान से फूल नहीं जाता, उसके लिये यह पुष्पमाला है।"

यह सुनकर एक ब्राह्मण ने सोचा कि यद्यपि मुझमें ये गुण नहीं हैं, तथापि यदि मैं देवता से कह दूँ कि हैं, और यदि देवता मुझे यह माला दे दे, तो संसार में मेरी बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ जाय। वह धृष्ट ब्राह्मण यह विचारकर देवता के पास गया और बोला—"भगवन्, मैंने कभी चोरी नहीं की, न कभी झूठ बोला, इसलिये कृपया मुझे यह माला दीजिए।" देवता ने उसे हार दे दिया।

इतने से उसे संतोष न हुआ। वह दूसरे देवता के पास गया और बोला—"भगवन्, यह हार किसे मिल सकता है?" देवता ने जवाब दिया—"जो ईमानदारी से धन कमाता है और लुचपन या ढोंग नहीं करता, उसे यह हार मिलता है।" ब्राह्मण ने कहा—"भगवन्, देखिए—मैंने जो कुछ कमाया है, ईमानदारी से कमाया है, इसलिये यह हार मुझे दीजिए।" देवता ने उसे हार दे दिया।

इससे भी उसे संतोष न हुआ। वह तीसरे देवता के पास गया और बोला—"भगवन्, यह हार किसे मिल सकता है?" देवता ने उत्तर दिया—"जिसने जीभ का स्वाद जीत लिया हो, उसे यह हार मिलेगा।" ब्राह्मण ने कहा—"भगवन्, मैं सदा सादा

अन्न खाता हूँ और किसी प्रकार का भी व्यसन नहीं करता, इसलिये यह हार मुझे दीजिए।" देवता ने हार दे दिया।

अंत में वह चौथे देवता के पास गया, और जाते ही एकदम कहने लगा—"भगवन्, यह हार मुझे दे दो।" देवता ने कहा—"जो सत्पुरुष की उसके सामने या पीठ पीछे निंदा नहीं करता, और जो सदा अपने वचन का पालन करता है, उसी को यह हार मिलता है।" ब्राह्मण बोला—"भगवन्, मैंने बुरे या भले किसी मनुष्य की कभी निंदा नहीं की, और न कभी वचन देकर तोड़ा, इसलिये यह हार मुझे दीजिए।" देवता ने हार दे दिया।

ये चारो देवता ग़ायब हो गए। फ़ौरन् ही उस ब्राह्मण के सिर में दर्द होने लगा और उन हारों के कोमल पुष्पों की पँखड़ियाँ उसके शरीर में लोहे की कीलों की तरह चुभने लगीं। ब्राह्मण को बहुत पीड़ा मालूम हुई, और वह पछताकर कहने लगा—"हे देव, हे भगवन्, मेरे अपराध क्षमा करो; मैंने जिन सद्गुणों और सदाचार का ढोंग किया, उनमें से मुझमें एक भी नहीं। मैं पापी हूँ, मेरा संपूर्ण आत्मा पापों से भरा हुआ है; मैं पाप में ही जन्मा हूँ; मुझे घोर दुःख से उबारो।" इस तरह पश्चात्ताप करनेवाले जीव को देवतों ने दुःख से छुड़ा दिया।

(१) सच्चा सदाचार तो स्वर्ग का पुष्प है—मनुष्य इसका दावा कैसे कर सकता है?

(२) सच्चे सदाचारी को अपने सदाचार का अभिमान नहीं होता। वह इस बात का प्रयत्न नहीं करता कि संसार में मैं सदाचारी

समझा जाऊँ। इतना ही नहीं, उसके मन में "मैं सदाचारी हूँ" इस बात का भान भी शायद ही होता हो।

(३) बड़ा बनना तो सभी को पसंद है, परंतु बड़े बनकर प्रतिष्ठा के कर्तव्यों का पालन करना बड़ा कठिन है। हमारा ही अभिमान हमें रोकता और कष्ट देता है।

(४) सच्ची नम्रता प्राप्त करने के लिये सदा ऊँची—अपने से बड़ों की ओर—दृष्टि रखनी चाहिए; इससे हमको यह मालूम होता है कि हम भावना के शिखर से कितने नीचे हैं।

(५) सत्य बोलना, चोरी न करना, अभिमान न करना, प्रामाणिकता यानी ईमानदारी का व्यवहार करना, खाने-पीने में सादा तथा नियमित रहना, किसी की निंदा न करना और अपने वचन का पालन करना—ये महान् सद्गुण हैं; जिसमें ये होते हैं, उससे देवता प्रसन्न होते हैं।

६४—वचनामृत

गर्व

[१]

रावण—सुनु शठ सोइ रावण बलशीला, हरगिरि जानु जासु भुजलीला।
जानु उमापति जासु शुराई, पूजे जेहि शिर-सुमन चढ़ाई।
शिर-सरोज निज करन उतारी, पूजे अमित वार त्रिपुरारी।
भुजविक्रम जानहिं दिगपाला, शठ अजहूँ जिनके उरशाला।
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई, जब-जब जाइ भिरेउँ वरिआई।
जिनके दशन कराल न फूटे, उर लागत मूलक इव टूटे।
जासु चलत डोलत इमि धरणी, चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरणी।
सोइ रावण जग विदित प्रतापी, सुने न श्रवण अलीक अलापी।

तेहि रावण कहँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान ;
रे कपि बर्बर खर्व खल, अब जाना तव ज्ञान।
अंगद तुही बालि कर बालक, उपजेउ वंश अनल कुलघालक।
गर्भ न खसेउ वृथा तुम जाए, निज मुख तापसदूत कहाए।
अंगद—हम कुलघालक सत्य तुम, कुलपालक दससीस ;
अंधउ बधिर न कहहिं अस, श्रवण नयन तव बीस।
वन विध्वंसि सुत बधि पुर जारा, तदपि न तेहिं कृत कछु अपकारा।
सुनु रावण, रावण जग केते, मैं निज श्रवण सुने सुनु तेते।
बलि जीतन इक गयउ पताला, राखा बाँधि शिशुन हयशाला।
खेलहिं बालक मारहिं जाई, दया लागि बलि दीन्ह छुड़ाई।
एक बहोरि सहसभुज देखा, धाइ धरा जलजंतु बिसेखा।
कौतुक लागि भवन लै आवा, सो पुलस्त्य मुनि जाय छुड़ावा।
एक कहत मोहिं सकुच अति, रहा बालि की काँख ;
तिन महँ रावन कवन तैं, सत्य कहहु तजि माँख।
शिर अरु शैल कथा चित रही, ताते बार बीस तैं कही।
सो भुजबल राखेउ उरघाली, जीतेउ सहसबाहु बलि बाली।
सुनु मतिमंद देह अब पूरा, काटे शीश न होइय शूरा।
बाजीगर कहँ कहिय न वीरा, काटै निज कर सकल शरीरा।
जरहिं पतंग विमोहवश, भार बहहिं खरवृंद ;
ते नहिं शूर कहावहीं, समुझ देखु मतिमंद।
(तुलसीकृत रामायण से संकलित।)

[२]

कूप क्या घमंड करे जिससे तालाब बड़ा,
जिससे बड़ी है नदी—बड़े एक एक से ;
नदियाँ भी सारी हैं समुद्र में समाती और,
भरता आकाश नहीं सागर अनेक से।

यों ही एक दूसरे से बड़े दीखते हैं यहाँ,
ज्ञानीजन यों ही है विचारता विवेक से ;
छोटे से भी छोटा समझे जो अपने को तब,
छूटे अभिमान सभी निश्चय ही टेक से।
बढ़े अभिमान तभी ऊँची ऊँची दृष्टि करो,
तृष्णा बढ़े त्यों ही नीचे नीचे को निहारिए ;
दुखियों का दुःख देख उनके मुकाबिले पै,
अपने को सुखी देख धीर उर धारिए।
जाड़े में तो जाइए सदा ही रवि-आतप में,
गरमी की धूप में त्यों छाया को सँभारिए ;
करके उपाय यों ही सोचिए विचारिए व,
तृष्णा अभिमान आदि दुर्गुण बिसारिए।

(दलपतराम की गुजराती कविता से।)

[२]

टीपटाप सिंगार का, करो न तुम अभिमान ;
ढोंग बाहरी है वृथा, ऐसा मन में जान।
उत्तम गुण संग्रह करो, जो दिलवाएँ मान ;
जिनसे भले मनुष्य की, होती है पहचान।
ज्ञान, भलाई, सत्य, दम, नीति, भला आचार ;
ये आभूषण-वस्त्र लो, करो खूब सिंगार।
फटते कभी न ये तथा, होते नहीं खराब ;
जैसे-जैसे बरतिए, बढ़ती जाती आब।
सुख मिलता इनसे सदा, होता है उपकार ;
करता सदा सहायता, ईश्वर जगदाधार।

६५—लव और कुश

[स्थान—वाल्मीकि के आश्रम के समीप]

पात्र

लव.................राम का पुत्र

चंद्रकेतु..............लक्ष्मण का पुत्र

सुमंत्र...... ....चंद्रकेतु का, दशरथ के समय का, पुराना सारथी

पुरुष.................चंद्रकेतु की सेना का एक सिपाही

ऋषिकुमार...........वाल्मीकि के पास पढ़नेवाले लव के सहपाठी ब्राह्मण विद्यार्थी

(रामचंद्रजी के अश्वमेधयज्ञ का घोड़ा वाल्मीकि मुनि के आश्रम के पास आया है। घोड़े के पीछे-पीछे सेना है, जिसका सेनापति लक्ष्मण का पुत्र चंद्रकेतु है। सैनिक लोग घोड़े के पीछे नीचे लिखे दोहे ज़ोर से चिल्लाकर कहते हैं)

(नेपथ्य में)

दशकंधर-कुल अटल रिपु, धर्म-धुरंधर-धीर ;
सात दीप नवखंड में, एक वीर रघुवीर ।
ताही को यह मख-तुरँग, झंडा सुभग अपार ;
अथवा इनके रूप में, क्षत्रिनु को ललकार ।

लव—(व्यथा प्रकट करके) अरे इन लोगों के वाक्य कैसे क्रोधानल बढ़ानेवाले हैं ! अरे क्या सारा संसार क्षत्रिय-शून्य हो गया, जो तुम इस प्रकार दून की हाँक रहे हो ।

(नेपथ्य में)

अरे, महाराज रामचंद्र के सामने कौन क्षत्रिय है ?

लव—अरे पामरो, तुम सबको धिक्कार है।

यदि बढ़े वह वीर, रह्यो करैं,
यह कहा अरु ढोंग भयावनों ;
कछु न लाभ वृथा बकवाद सों ,
सरनु मारि हरौं तुम्हरी भुजा।

अरे लड़को, ढेले मार-मारकर इस घोड़े को इधर फेर दो, जिससे यह बेचारा हिरनों में चरता फिरे और उधर न जाने पावे।

(एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—(क्रोध और गर्व से) अरे क्यों रे चंचल, क्या बक-बक कर रहा है। निष्ठुर निर्मोही शस्त्रधारियों का दल बच्चों की भी सगर्व बातें नहीं सहता, जा जब तक अरिमर्दन राजकुमार चंद्रकेतु पूर्वीय वनों का मनोरम दृश्य देखकर न लौट आवें, तब तक इन गहन वृक्षों की आड़ में होके भाग जा—अरे जा।

ऋषिकुमार—कुमार, इस घोड़े को रहने दो, वह देखो शस्त्र चमकाते हुए सैनिकों का दल तुम्हें धमका रहा है और यहाँ से आश्रम बहुत दूर है ; इसलिये चलो रे सब-के-सब हिरन की-सी छलाँगें मारते हुए भाग चलें।

लव—(हँसकर) क्या सचमुच शस्त्र चमक रहे हैं ! (धनुष उठाकर) अच्छा तो फिर—

प्रबल प्रतंचा जिह लहरात चंचलासी,
उतकट कोटि विकराल दाढ़ जाकी है ;

घोर घन घररर घोर जा टकोरन की,
गजबाली अट्टहाँसी रनरंग छाकी है।
विकट उदरवारो खेंचत तनत सोई,
मानौं जमुहाई लेन परचंड ताकी है;
विश्वहि प्रसनु काज उद्यत ये चाप मम,
धारै आज जम की सदाप छवि बाँकी है।

(सब जाते हैं)

(लव का और चंद्रकेतु की सेना का भारी युद्ध होता है; चंद्रकेतु की सेना लव की मार से घबराकर भाग जाती है; इतने में चंद्रकेतु जो वन की शोभा देखने गया हुआ था, आता है, जिससे सेना की हिम्मत बढ़ती है और वह थिर लड़ती है; पर एक वीर पर सारी सेना को टूट पड़ती देखकर—)

चंद्रकेतु—लरत खन अति चंचलित जिन अंगुली उत्ताल;
समर शस्त्र कराल गहि अस कुपित सैन बिसाल।
कनक-किंकिनि झनझनावत टिनिनाटिन रथ-जाल;
निरत मद-जल चुअत श्यामल द्विरद वारिद-माल।
जे घटा दल सकल घेरत एक बालहिं आज;
होत नीचे नैन मम लखि लाज को यह काज।

सुमंत्र—वत्स, जब सब मिलकर इसका बाल बाँका नहीं कर सकते, तो फिर एक-एक से क्या होता है।

(सेना को भागता देखकर)

चंद्रकेतु—(विस्मय, लज्जा और खेद से) धिक्कार है कि हमारी सेना के लोग रण से भागने लगे।

(सुमंत्र से नाम पूछकर)

तुच्छ सिपाहनु विजय करि, यस न बढ़ै लव तोर,
हौंस बुझावहु जाय की, मो सँग लरि इत ओर।

सुमंत्र—कुमार देखिए देखिए—

सुनत ही तुव टेर, दल को दलन ताजि रनधीर;
मुरत इत रन मद भरयो यह लसत बालक वीर।
सघन घन की गरजना सुनि, सिंह को जिमि बाल;
फिरत सदरप ठवनि सों ताजि कुंजरनि ततकाल।

(चंद्रकेतु रथ में से उतर पड़ता है, क्योंकि रथ में बैठकर पैदल के साथ युद्ध करना वीर क्षत्रियों का धर्म नहीं)

लव—कुमार, बस करो, हो गया आदर। आप तो रथ पर बैठे ही अच्छे लगते हैं।

चंद्रकेतु—तो आप भी दूसरे रथ की शोभा बढ़ावें।

लव—(सुमंत्र से) आर्य, राजकुमार को रथ पर बैठा लीजिए।

सुमंत्र—तो तुम भी वत्स चंद्रकेतु की बात मान लो।

लव—जो वस्तु अपनी ही है, भला उसके स्वीकार करने में संकोच कैसा? किंतु बात यह है कि वनवासी होने के कारण हमें रथ पर चढ़ने का अभ्यास नहीं।

सुमंत्र—वत्स, तुम दर्प और सौजन्य का यथोचित बर्ताव करना जानते हो, जो कहीं तुम-ऐसे को इक्ष्वाकुकुल-कमल-दिवाकर राजा रामचंद्र देखते, तो उनका हृदय प्रेम से गद्गद हो जाता।

लव—सुना गया है कि वह राजर्षि बड़े सज्जन पुरुष हैं।

साँचहि हमहुँ न मख विघनकारि;
जो रहे आप निज हिय विचारि।
गुनवंत राम कों जगत माहिं;
कहु मानत को जन पूज्य नाहिं।

पै सब छत्रिनु कों तुच्छ मानि ;
तुव हय रच्छक जो कही बानि ।
सुनि ताहि हमहुँ जिय चढ़्यो रोस ;
बस, और कछू नाहिं कियो दोस ।

चंद्रकेतु—(मुस्किराता हुआ) क्या आपको हमारे पूज्यचरण तात के प्रताप को बड़ाई बुरी लगती है ।

लव—अजी बुरी लगे या न लगे, पर इतना मैं पूछता हूँ कि राजा रामचंद्र तो बड़े धीर स्वभाव के सुने जाते हैं । वह न तो स्वयं अभिमानी है, न उनकी प्रजा को अभिमान होता है, फिर बतलाइए ये लोग उन्हीं के आदमी होकर ऐसी राक्षसी भाषा क्यों प्रयोग करते हैं—देखिए—

दरप भरे उनमत्त पुरुष की बानी ;
ऋषीनु ने सब ठौर राच्छसी मानी ।
सकल बैर को सोई बीज बुवावै ;
नष्ट-भ्रष्ट करि जगत कष्ट उपजावै ।

इस प्रकार उन्होंने इसकी निंदा की है और इसके विरुद्ध जो अन्य वाणी है, इसकी प्रशंसा वह इस भाँति करते हैं—

कामना पूरी करै सबकी दुख-दारिद को दल दूरि बहावै ;
पाप के पुंजहि लुंज करै अरु कीरति लोनी लता उलहावै ।
सुंदर सूनृत बानी सदा जय-मंगल मोद की मातु सुहावै ;
याहीं सों धीरनु के मत में वह कामदुहा सुरधेनु कहावै ।

और, चंद्रकेतु जो यह कहते हैं कि क्या तुमको पूज्यचरण तात के प्रताप की बड़ाई बुरी लगती है, सो आप ही बतलाइए कि क्षत्रिय-धर्म क्या एक ही व्यक्ति के लिये है, क्या एक राम

ही के सिर क्षत्रियों के समस्त वीरतादि गुणों का ठेका है और कोई उनका आधार ही नहीं हो सकता ?

सुमंत्र—बस करिए, अधिक न बढ़ाइए, कहने ही से परख लिया कि तुम रघुवंशावतंस महाराज राम को नहीं जानते।

प्रबल सैनिक वीरनु मारिकें
प्रकट सत्य करी तुम वीरता;
परशुराम झुक जिह सामने
जनि बको उनकी कहि बात यों।

लव—(हँसकर) आर्य, मान लो कि उन्होंने परशुरामजी को भी हरा दिया, पर इससे भी क्या बड़ी प्रशंसा की बात हुई ?

जीभ को बल द्विजन में यह स्वयंसिद्ध प्रमान;
बाहु को बल छत्रियनु में जग प्रसिद्ध महान।
शस्त्रधारी द्विज रहेउ भृगु-बंस-मनि महाराज;
कहु तिनहि जय करि राम ने कियो कौन दुर्जय काज ?

चंद्रकेतु—(बिगड़कर)

कौन सो यह पुरुष उपज्यो नयो जग के माहि;
जासु लेखे परसुरामहु वीरपुंगव नाहि।
सप्त भुवनहिं अभय को जिन विपुल दीयो दान;
तिन तात पावन-चरित को नहिं जाहि रंचक ज्ञान।

लव—अजी, रघुपति का चरित्र और उनकी महिमा कौन नहीं जानता, यदि कुछ कहने की बात हो, तो कही भी जाय।'

(स्वर्गीय पं० सत्यनारायण कविरत्न के अनुवाद से।)

(१) शूरता और शूरता के योग्य न्याय, धर्म, आत्मसम्मान (अपनी इज़्ज़त का ख़याल) और सज्जनता, इन सबका दिग्दर्शन शिक्षक को विद्यार्थियों को कराना चाहिए।

(२) रावण आदि की वीरता में जो स्वार्थ, घमंड, क्रूरता इत्यादि दोष मिले हुए थे, उन सबको बतलाना चाहिए ।

(३) 'राक्षसी' और 'सूनृता' वाणी का, लव का बतलाया हुआ भेद विद्यार्थियों को विस्तार-पूर्वक ख़ूब समझाना चाहिए, और उन-जैसे ही एक विद्यार्थी (लव) का कहा हुआ उपदेश बालकों में इस प्रकार फैलाना चाहिए कि कड़ुए शब्द, घमंड के बोल इत्यादि सब काँटे उनकी वाणी में से बिलकुल ग़ायब हो जायँ ।

(४) "अधजल गगरी छलकत जाय", "ख़ाली बर्तन, तेज़ आवाज़", "जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं"—सच्चा बल बोलने में नहीं, कर दिखलाने में है; जो अपने से न हो सके, ऐसी ठाली बातें करना (देखो, ऊपर की घमंड के विषय की कविता में रावण के वचन) झूठा घमंड है । अपमान के जवाब में झूठी बकवाद न करके लव ने एकदम सम्मुख खड़ी सेना की ध्वजा पकड़ ली—यह आत्मसम्मान से पूर्ण सच्ची शूरता है ।

(५) आत्मसम्मान और गर्व का भेद, दृष्टांत और विवेचन-पूर्वक, शिक्षक को विद्यार्थियों को समझाना चाहिए ।

(६) शिष्टता विनय का प्रथम लक्षण है । शिष्टता अच्छे घराने की और अशिष्टता बुरे घराने की निशानी है (देखो, पंडित तथा क़साई के घरों के दो तोतों की कथा) ।

(७) बड़ों, मित्रों आदि के प्रति प्रणाम, नमस्कार आदि से किस प्रकार सम्मान तथा प्रेम का भाव प्रकट करना चाहिए, और मुलाक़ात, बातचीत आदि में मनुष्यों को आपस में कैसे बर्ताव करना चाहिए इत्यादि शिष्टता के नियमों का ज्ञान शिक्षक को विद्यार्थियों को कराना चाहिए ।

(८) हृदय को विनय-पूर्ण रक्खोगे, तो शिष्टता अपने आप आ जायगी । हृदय में यदि विनय न हो, तो शिष्टता केवल ढोंग है ।